वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 16
ISBN 978-93-80353-67-8

बाल विकास

(तृतीय भाग)

–रचयित्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

उन्नीसवाँ संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
2200 प्रतियाँ	वैशाख शु. तृतीया, 13 मई 2013	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादकः–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

सन् 1974 से सन् 2006 तक – लगभग 50000 प्रतियाँ प्रकाशित
सत्रहवाँ संस्करण-सन् 2008, प्रतियाँ-2200, अट्ठारहवाँ संस्करण-सन् 2012, प्रतियाँ-2200

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

जीवन में संस्कारों का बहुत ही महत्व है। उत्तम देश, उच्च कुल एवं मानव पर्याय प्राप्त होकर भी मानव को सदाचरणरूपी अच्छे संस्कार प्राप्त नहीं होते हैं तो उसका जीवन पशु के समान ही निस्सार हो जाता है। कहा भी है– ''ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः'' अर्थात् ज्ञान से रहित मानव पशु के समान माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मानव को सुसंस्कारित होने के लिए तथा जिनागम के रहस्य को समझने के लिए बाल अवस्था से ही धार्मिक-नैतिक ज्ञान का ग्रहण करना बहुत ही आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखकर बालकों को ज्ञान कराने के लिए बालविकास नाम से यह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित की गई है जिसका यह तृतीय भाग है।

पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों पर 250 से अधिक पुस्तकों का लेखन, ग्रन्थों की हिन्दी व संस्कृत टीकाएँ, इन्द्रध्वज आदि काव्यात्मक पूजन के ग्रंथ लिखे हैं। उसी शृंखला में बालकों को सुबोध शैली में ज्ञान कराने के उद्देश्य से सन् 1974 में यह बाल विकास पुस्तक सचित्र लिखकर प्रदान की। तब से लेकर आज तक लाखों की संख्या में इनका प्रकाशन हो चुका है। बालकों से लेकर वृद्धों तक सभी ज्ञानपिपासुओं के लिए ये पुस्तकें जैनधर्म का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कराने हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं।

समाज के द्वारा संचालित समस्त शिक्षण संस्थाओं के संचालकों के लिए प्रेरणा है कि बालविकास के चारों भाग मंगाकर बालक-बालिकाओं को भगवान महावीर स्वामी की वाणी का रसास्वादन करने की प्रेरणा करें। भावी पीढ़ी को धर्मसंस्कार प्रदान करने हेतु समाज के कार्यकर्ता बच्चों के लिए रात्रि पाठशाला आदि खोलकर शिक्षण की व्यवस्था करावें एवं यथासमय उनकी परीक्षाओं के लिए जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से संपर्क करके ज्ञानार्जन एवं ज्ञानदान का महान पुण्य लाभ अर्जित करें।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना
माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती
आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।
साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।
तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा– भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।
महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**
शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।
रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

सम्मेदशिखर टोंक वन्दना

-आर्यिका चन्दनामती

तीर्थराज सम्मेदशिखर है, शाश्वत सिद्धक्षेत्र जग में।
एक बार जो करे वन्दना, वह भी पुण्यवान सच में।।
ऊँचा पर्वत पार्श्वनाथ हिल, नाम से जाना जाता है।
जिनशासन का सबसे पावन, तीरथ माना जाता है।।1।।

जब प्रत्यक्ष करें यात्रा, उस पुण्य का वर्णन क्या करना।
लेकिन प्रतिदिन भी परोक्ष में, गिरि का ध्यान किया करना।।
आँख बन्दकर करो कल्पना, मेरी यात्रा शुरू हुई।
प्रातःकाल चले सब यात्री, जय जयकारा शुरू हुई।।2।।

एक हाथ में छड़ी दूसरे, में चावल की झोली है।
ज्यादातर सब पैदल हैं, पर किसी-किसी की डोली है।।
कभी न चलने वाले भी, हिम्मत कर पर्वत चढ़ते हैं।
पारस प्रभु के पास पहुँचने, हेतु कदम बढ़ चलते हैं।।3।।

चढ़ते-चढ़ते आठ किलोमीटर, का पथ जब तय होता।
दायें हाथ तरफ तब इक, चौपड़ा कुंड दर्शन होता।।
वहाँ दिगम्बर जिनमंदिर, संस्कृति की अमिट धरोहर है।
पार्श्वनाथ चन्द्रप्रभु बाहुबलि की मूर्ति मनोहर हैं।।4।।

उस मन्दिर में रुककर अपने, प्रभु का दर्शन कर लेना।
सुन्दर बनी धर्मशाला में, इच्छा हो तो ठहर लेना।।
मंदिर दर्शन करके फिर, यात्रा प्रारंभ करो अपनी।
बायें हाथ चलो चढ़ कर जहाँ, गौतम स्वामी टोंक बनी।।5।।

यहाँ पहुँचकर ठंडी-ठंडी, हवा थकान मिटाती है।
गणधर चरण वन्दना से, यात्रा की शक्ती आती है।।
प्रथम टोंक यह हुई पास में, दुतिय टोंक कुंथु जिन की।
तीर्थंकर क्रम में यह पहली, टोंक नमूँ कुंथु प्रभु की।।6।।

इन टोंकों के दर्शन से, उपवास का फल प्रारंभ हुआ।
त्रय प्रदक्षिणा देने से, आगे शुभ गति का बंध हुआ।।

शुभ भावों से आगे बढ़कर, टोंक तीसरी आती है।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर की, वन्दना सहज हो जाती है।।7।।

चौथा नाटक कूट तीर्थंकर, अरहनाथ का आया है।
जहाँ करोड़ों मुनियों ने भी, तपकर शिवपद पाया है।।
वन्दन कर आगे बढ़ने से, मल्लिनाथ के चरण मिले।
आगे छठे टोंक पर श्री, श्रेयाँसनाथ पदकमल मिले।।8।।

इन सबका वन्दन कर मैंने, सिद्धशिला को नमन किया।
वहाँ विराजे सिद्धों को, अपने मन में स्मरण किया।।
थकना नहिं अब पुष्पदंत की, सप्तम टोंक पे चलना है।
आगे चढ़ने हेतु वहीं से, आतमशक्ती भरना है।।9।।

पुष्पदंत प्रभु के चरणों में, अर्घ्य चढ़ाकर नमन किया।
और चले आठवीं टोंक पर, पदमप्रभू का शरण लिया।।
नवमीं टोंक विराजे श्री, मुनिसुव्रत जिन के चरणकमल।
इन सबके पावन पद में, श्रद्धा से मैंने किया नमन।।10।।

हे भव्यात्मन् ! अब दसवीं चन्द्रप्रभ टोंक पे चलना है।
पहले दौड़-दौड़ कर उतरो, फिर ऊँचाई चढ़ना है।।
चन्द्रप्रभ मंदिर में जाकर, चरणवन्दना करना है।
अपने सारे सुख-दुख को, प्रभु चरण बैठकर कहना है।।11।।

अब ग्यारहवीं टोंक पे चलकर, ऋषभदेव को नमन करो।
गिरि कैलाश से मुक्त हुए, यहाँ उनके चरण चिन्ह प्रणमो।।
श्री शीतल जिनवर की है, बारहवीं टोंक प्रसिद्ध कही।
मन-वच-तन से वन्दन कर, पाओ यात्रा का पुण्य सही।।12।।

श्री अनंत तीर्थंकर का, तेरहवाँ कूट स्वयंभू है।
उनके चरणों में श्रद्धायुत, शीश झुकाकर वन्दूँ मैं।।
संभव जिनवर का चौदहवाँ, धवलकूट माना जाता।
वासुपूज्य जिनका पन्द्रहवां, टोंक सभी को सुखदाता।।13।।

इनको वन्दन कर आगे, अभिनन्दन प्रभु के पास चलो।
बन्दर चिन्ह सहित उन प्रभु की, टोंक पे बन्दर से न डरो।।
अभिनन्दन के चरणों में, कर नमन चलो जलमंदिर तक।
चढ़ो वहाँ से जहाँ है गौतम, गणधर प्रभु की टोंक प्रथम।।14।।

फिर सत्रहवीं टोंक से अपनी, अगली यात्रा करना है।
धर्मनाथ प्रभु के चरणों में, नमन सभी को करना है।।
सुमतिनाथ का अट्ठारहवाँ, टोंक है अविचल कूट कहा।
नौ करोड़ बत्तीसलाख, उपवास का फल मिलता है यहाँ।।15।।

उन्निसवाँ है टोंक शांतिजिन, का जो यहाँ से मोक्ष गये।
नौ करोड़ से अधिक मुनी, इस कुंदकूट से मोक्ष गये।।
शांतिनाथ के संग सब मुनियों, को श्रद्धा से नमन किया।
पुनः बीसवीं टोंक पे जाकर, वीरप्रभू की शरण लिया।।16।।

श्री सुपार्श्व तीर्थंकर इक्कीसवीं टोंक पर राजे हैं।
कहते हैं यहाँ की मिट्टी से, रोग सभी नश जाते हैं।।
इनका वंदन करके पास में, विमल नाथ की टोंक चलो।
बाइसवीं इस टोंक को नमकर, अजितनाथ के निकट चलो।।17।।

थके कदम से तेइसवीं इस, टोंक का वंदन कठिन तो है।
लेकिन यात्रा पूरी करने, का शुभ भाव हृदय में है।।
धीरे-धीरे चढ़कर आखिर, अजितनाथ तक पहुँच गये।
उन चरणों में नमन किया फिर, नेमिनाथ जी प्राप्त हुए।।18।।

इस चौबिसवीं टोंक पे नेमीनाथ चरण को नमन किया।
पारसनाथ प्रभू पाने हेतू फिर मैंने गमन किया।।
स्वर्णभद्र यह टोंक है अंतिम, यात्रा पूर्ण यहाँ होती।
पार्श्वनाथ की पूजन करके, मन सन्तुष्टि यहाँ होती।।19।।

कुछ क्षण ध्यान करो फिर नीचे, गुफा में स्थित चरण नमो।
खुशी-खुशी वन्दना पूर्ण कर, पर्वत से नीचे उतरो।।
यही वन्दना आत्मा की, भव्यत्व शक्ति बतलाती है।
तभी ''चन्दनामती'' सभी में, भक्ति स्वयं आ जाती है।।20।।

भगवन् ! इस सम्मेदशिखर का, पुनः पुनः दर्शन पाऊँ।
यही भावना है मन में, सिद्धों के गुण में रम जाऊँ।।
इसी क्षेत्र से कभी मुझे, निर्वाण धाम भी मिल जावे।
सिद्ध भक्ति मेरे जीवन में, सिद्ध अवस्था दिलवाये।।21।।

विषय सूची

पाठ	विषय	पृष्ठ
1.	चैत्य वन्दना	1
2.	दर्शन पाठ	2
	दर्शन पाठ का हिन्दी पद्यानुवाद	3
3.	छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय	4
4.	सात तत्त्व, नव पदार्थ	7
5.	मिथ्यादर्शन	8
6.	सम्यग्दर्शन	10
7.	अभक्ष्य	21
8.	नरक के नाम और दुःख	23
9.	स्वर्गों के नाम व सुख	25
10.	पंचगुरुभक्ति	27
11.	श्रावक के भेद	27
12.	सात व्यसन	28
13.	आलोचना पाठ	35
14.	आठ कर्म	38
15.	कर्म आस्रव के कारण	39
16.	पंचकल्याणक	41
17.	आत्मा का स्वभाव	43
18.	भगवान ऋषभदेव	45

पाठ–1 चैत्य वन्दना

मध्यलोक के चार शतक, अट्ठावन अकृत्रिम मंदिर ।
सबमें इक सौ अठ जिन प्रतिमा, वंदूँ मैं मस्तक नतकर ।।
आठ कोटि औ छप्पन लाख, सहस सत्तानवे चार शतक ।
इक्यासी जिनगृह अकृत्रिम, तीन लोक के नमूँ सतत ।।1।।

नव सौ पच्चीस कोटि त्रेपन, लाख सत्ताइस सहस प्रमाण ।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, शिव सुख हेतू करूँ प्रणाम।।
ज्योतिष-व्यंतर गृह में शाश्वत, जिन प्रतिमा हैं संख्यातीत।
पूर्व दिशामुख पर्यंकासन, राजें सदा नमूँ नत शीश ।।2।।

अधो-मध्य और ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम-कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं उनकी नितप्रति, सुरगण करें भक्ति से सेव।।
भवनवासि-व्यंतर-ज्योतिष, वैमानिकसुर परिवार सहित।
दिव्यगंध दिव चूर्णवास से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति ।।3।।

अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी जिन प्रतिमा को वंदूँ, अर्चूं पूजूँ नमूँ सतत।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे ।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे ।।4।।

दिगम्बर मुनिराज की स्तुति

अन्तर विषय वासना वरतें, बाहर लोकलाज भयभारी ।
तातें परम दिगम्बर मुद्रा, धर नहिं सकें दीन संसारी ।।
ऐसे दुर्द्धर नगन परीषह, जीतें साधु शील व्रतधारी।
निर्विकार बालकवत् निर्भय, तिनके पायन धोक हमारी ।।

पाठ–2 दर्शन पाठ

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।1।।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं विद्यते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ।।2।।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभं ।
नैक जन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ।।3।।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम् ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ।।4।।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणं।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ।।5।।

जीवादितत्त्वं प्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय ।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।।6।।

चिदानंदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ।।7।।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारूण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।8।।

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।9।।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ।।10।।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, माऽभूत चक्रवर्त्यऽपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ।।11।।

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोट्यामुपार्जितं ।
जन्ममृत्युजरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ।।12।।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव त्वदीयचरणांबुजवीक्षणेन।
अद्यत्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणं ।।13।।

दर्शन पाठ का हिन्दी पद्यानुवाद

जिनदेवदेव का दर्शन यह, सब पाप नाश करता क्षण में।
यह स्वर्गगमन की सीढ़ी है, मुक्ती का साधन है सच में।।1।।

श्री जिनवर के दर्शन से, साधूगण के भी वन्दन से ।
छिद्र सहित अञ्जुलि जल सम, चिरकाल पाप नहिं ठहर सकें।।2।।

श्री वीतराग मुख पद्मरागमणि, प्रभसम अवलोकन करके।
जन्म-जन्म कृत पाप सभी, नश जाते हैं प्रभु दर्शन से।।3।।

जिनदेव सूर्य का दर्शन ही, संसार महातम नाश करे।
भविजन मन कमल विकासी है, औ सकल अर्थ परकाश करे।।4।।

जिनराज चन्द्र का दर्शन यह, सद्धर्मामृत की वृष्टि करे।
जन्म दाह का नाश करे, सुख सागर की नित वृद्धि करे।।5।।

जीवादि तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्वादि अठगुण संयुत।
दैगम्बर अतिशय शांतरूप, देवाधिदेव जिन नमूँ सतत।।6।।

जिनराज चिदानंदैक रूप, परमात्म प्रकाशक परमात्मन्।
परमात्म प्रकाशन हेतू मैं, नित नमूँ तुम्हें हे सिद्धात्मन्।।7।।

नहिं अन्य प्रकार शरण कोई, तुम ही हो मुझको नाथ! शरण।
अतएव परम करुणा करके, रक्षा करिये मेरी भगवन्।।8।।

त्रिभुवन में अन्य नहीं त्राता, नहिं त्राता मम नहिं त्राता है।
श्री वीतराग सा अन्य देव, नहिं हुआ कभी ना होता है।।9।।

जिन में भक्ती जिन में भक्ती, जिनवर में ही भक्ती प्रतिदिन।
नित रहे मेरी नित रहे मेरी, नित रहे मेरी भव-भव में जिन।।10।।

जिनधर्म छोड़कर हे भगवन्! मैं चक्रीपद भी नहिं चाहूँ।
जिनधर्म सहित चाहे किंकर, या दारिद्री भी हो जाऊँ।।11।।

जन्म-जन्म कृत पाप सभी, बहु कोटि जन्म में संचित भी।
जो जन्म-जरा-मृत्यू कारण हैं, जिनवंदन से नशते सब ही।।12।।

प्रभु! आज नयन युग सफल हुए, तव चरणांबुज अवलोकन से।
भव वारिधि चुल्लूभर जल सम, मम त्रिभुवन तिलक! आज भासे।।13।।

पाठ-3 छह द्रव्य — पाँच अस्तिकाय

द्रव्य का लक्षण–

'सद्द्रव्य लक्षणं' द्रव्य का लक्षण सत् है। सत् क्या है ? 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य पाया जाये, वह सत् है।

उत्पाद–द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं जैसे– जीव की देवपर्याय का उत्पाद ।

व्यय–पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं। जैसे–जीव की मनुष्य पर्याय का विनाश ।

ध्रौव्य–पूर्व पर्याय का विनाश और नवीन पर्याय का उत्पाद होने पर भी सदा बने रहने वाले मूल स्वभाव को ध्रौव्य कहते हैं। जैसे–जीव की मनुष्य तथा देव दोनों पर्यायों में जीवत्व का रहना। ये तीनों अवस्थाएँ एक समय में ही होती हैं।

द्रव्य का दूसरा लक्षण–

'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' गुण और पर्यायों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं।

जो द्रव्य के साथ-साथ रहें, वे गुण कहलाते हैं। जैसे–जीव का अस्तित्व या ज्ञानादि। गुण के भी दो भेद हैं–सामान्य और विशेष।

सामान्य गुण–जो सभी द्रव्यों में सामान्य रूप से पाये जावें, वे सामान्य गुण हैं जैसे–अस्तित्व गुण सभी द्रव्यों में समान रूप से रहता है। अस्तित्व–विद्यमान अवस्था ।

विशेष गुण–जो दूसरों में न पाये जायें, वे विशेष गुण हैं। जैसे–जीव के ज्ञान, दर्शन और पुद्गल के रूप, रस आदि।

जो क्रम से हों वे पर्यायें हैं। उनके भी दो भेद हैं–अर्थ और व्यंजन पर्याय।

अर्थ पर्याय–प्रत्येक द्रव्यों में जो प्रतिक्षण सूक्ष्म परिणमन होता है, वह अर्थ-पर्याय है। यह मन और वचन के अगोचर है।

व्यंजन पर्याय–जीव और पुद्गल की स्थूल पर्यायों को व्यंजन पर्याय कहते हैं। जैसे–जीव की मनुष्य, देव आदि पर्यायें और पुद्गल की चौकी, पुस्तक आदि पर्यायें स्थूल हैं।

द्रव्य के छह भेद हैं–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

जीव द्रव्य का लक्षण–

'उपयोगो लक्षणं' जीव का लक्षण उपयोग है। इसके दो भेद हैं– ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग।

ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन अज्ञान।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

पुद्गल का लक्षण–

जिसमें हमेशा पूरण और गलन पाया जाय, वह पुद्गल है। इसके दो भेद हैं–अणु(परमाणु) और स्कंध ।

पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी (जिसका दूसरा भाग न हो सके) हिस्से को अणु या परमाणु कहते हैं।

दो या तीन से लेकर संख्यात, असंख्यात या अनंत परमाणुओं से बने हुए पुद्गल पिंड को स्कंध कहते हैं।

पुद्गल के मुख्य चार गुण हैं–स्पर्श, रस, गंध और वर्ण, इनके भी उत्तर भेद बीस हो जाते हैं, स्पर्श के आठ भेद–हलका, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठंडा और गर्म। रस के 5 भेद–खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा, और कषायला। गंध के दो भेद–सुगंध और दुर्गंध। वर्ण के 5 भेद–काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। ये पुद्गल के बीस गुण हैं।

धर्म द्रव्य का लक्षण–

जो जीव और पुद्गलों को चलने में सहकारी हो, वह धर्म द्रव्य है। जैसे– मछली को चलने में जल सहकारी है।

अधर्म द्रव्य का लक्षण–

जो जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहकारी हो वह अधर्म द्रव्य है। जैसे–चलते हुए पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया सहकारी है।

आकाश द्रव्य का लक्षण–

जो समस्त द्रव्यों को अवकाश (स्थान) देता है, वह आकाश द्रव्य है। इसके दो भेद हैं–लोकाकाश और अलोकाकाश।

जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँचों द्रव्य पाये जाते हैं, वह लोकाकाश है। उसके बाहर चारों तरफ अनंतानंत अलोकाकाश है।

काल द्रव्य का लक्षण–

जो सभी द्रव्यों के परिणमन–परिवर्तन में सहायक हो, वह कालद्रव्य है। इसके दो भेद हैं–निश्चयकाल और व्यवहारकाल। वर्तना लक्षण वाला निश्चय काल है। घड़ी, घंटा, दिन, महिना आदि व्यवहार काल है।

एक-एक द्रव्य कितने हैं ?

जीव द्रव्य अनंतानंत हैं। पुद्गल द्रव्य भी जीव से अनंतगुणें अनंतानंत हैं। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य एक-एक तथा अखण्ड हैं। काल द्रव्य असंख्यात हैं।

इन एक-एक द्रव्य के प्रदेश कितने-कितने हैं ?

एक जीव द्रव्य, धर्म, अधर्म और लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गल के एक से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। अलोकाकाश के अनंत प्रदेश हैं और काल द्रव्य एक प्रदेशी है।

अस्तिकाय किसे कहते हैं–

जो अस्ति–विद्यमान हो अर्थात् सत् लक्षण वाला हो, उसे अस्ति कहते हैं और बहु प्रदेशों को काय कहते हैं। प्रारम्भ के पांच द्रव्य अस्तिकाय हैं। काल द्रव्य अस्तिरूप तो है किन्तु काय-बहुप्रदेशी न होने से अस्तिकाय नहीं है। अतः पांच द्रव्य ही अस्तिकाय कहलाते हैं।

जीव द्रव्य संसार अवस्था में मूर्तिक और सिद्ध अवस्था में अमूर्तिक है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक और शेष चार द्रव्य अमूर्तिक हैं।

प्रश्नावली–(1) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य में कितने समय लगते हैं ? (2) द्रव्य का दूसरा लक्षण क्या है ? (3) द्रव्यों की अर्थ पर्याय का लक्षण बताओ। (4) उपयोग के कितने भेद हैं ? (5) स्कंध किसे कहते हैं और उसमें कितने गुण होते हैं ? (6) जीव, धर्म और काल द्रव्य के लक्षण बताओ (7) अस्तिकाय कितने हैं और कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है ? (8) जीवद्रव्य मूर्तिक है या अमूर्तिक ? (9) जो अस्तिकाय हैं वे द्रव्य हैं या नहीं ?

पाठ–4 सात तत्त्व–नव पदार्थ

वस्तु के यथार्थ स्वभाव को तत्त्व कहते हैं। उसके सात भेद हैं– जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

जीव–जिसमें ज्ञान-दर्शनरूप भावप्राण और इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास रूप द्रव्यप्राण पाये जाते हैं, वह जीव है।

अजीव–इससे विपरीत लक्षण वाला अजीव तत्त्व है अर्थात् जीव से भिन्न पांचों द्रव्य अजीव हैं।

आस्रव–रागद्वेषादि भावों के कारण आत्मप्रदेशों में कर्मों का आना आस्रव है। इसके दो भेद हैं– भाव आस्रव और द्रव्य आस्रव।

आत्मा के जिन भावों से कर्म आते हैं, उन भावों को भावास्रव और पुद्गलमय कर्म परमाणुओं के आने को द्रव्यास्रव कहते हैं।

बंध–आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ एकमेक हो जाना बंध है। इसके भी दो भेद हैं–भाव बंध और द्रव्य बंध।

आत्मा के जिन परिणामों से कर्म बंध होता है, वह भावबंध है और कर्म परमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों में दूध-पानी के सदृश एकमेक हो जाना द्रव्य बंध है।

संवर–आते हुए कर्मों का रुक जाना संवर है। उसके भी दो भेद हैं– भावसंवर और द्रव्यसंवर।

जिन समिति, गुप्ति आदि भावों से कर्म रुक जाते हैं, वह भाव संवर है और पुद्गलमय कर्मों का आगमन रुक जाना द्रव्य संवर है।

निर्जरा–आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का एकदेश क्षय होना निर्जरा है। इसके भी दो भेद हैं–भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा।

आत्मा के जिन तपश्चरण आदि भावों से कर्म झड़ते हैं, वे परिणाम भाव निर्जरा हैं और पौद्गलिक कर्मों का एकदेश निर्जीण होना द्रव्य निर्जरा है।

मोक्ष–सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से छूट जाना मोक्ष है। उसके भी दो भेद हैं– भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष।

आत्मा के जिन भावों से संपूर्ण कर्म अलग होते हैं, वह भाव मोक्ष है और सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से छूट जाना द्रव्य मोक्ष है।

नव पदार्थ कौन-कौन से हैं ?

इन्हीं सात तत्त्वों में पुण्य और पाप को मिला देने से नव पदार्थ कहलाते हैं। जो आत्मा को पवित्र करे या सुखी करे, उसे पुण्य कहते हैं। जिसके उदय से जीव को दुःखदायक सामग्री मिले, वह पाप है।

इन सात तत्त्वों में से आस्रव और बंध तत्त्व संसार के कारण हैं तथा संवर और निर्जरा तत्त्व मोक्ष के लिए कारण हैं ऐसा समझकर आस्रव और बंध के कारणों से बचना चाहिए तथा संवर-निर्जरा के कारणों को प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्नावली-(1) सात तत्त्वों के नाम बताओ। (2) जीव, आस्रव, बंध और मोक्ष का लक्षण बताओ। (3) द्रव्य निर्जरा और भाव निर्जरा में क्या अंतर है ? (4) पदार्थ कितने हैं ? (5) मोक्ष के लिये कारणभूत तत्त्व कौन-कौन हैं ?

पाठ–5 मिथ्या दर्शन

विपरीत या गलत धारणा का नाम मिथ्यात्व है अथवा सच्चे देव, शास्त्र गुरू पर श्रद्धान न करना या झूठे देव, शास्त्र, गुरू का श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के उदय से जीव को सच्चा धर्म नहीं रुचता है। जैसे– पित्त के रोगी को दूध भी कड़वा लगता है।

इसके मुख्य दो भेद हैं– गृहीत और अगृहीत।

पर के उपदेश आदि से कुदेवादि में जो श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

अनादिकाल से बिना किसी के उपदेश के शरीर को ही आत्मा मानना व पुत्र, धन आदि में अपनत्व करना अथवा कुदेवादि की भक्ति करना अगृहीत मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं– एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान।

जीवादि वस्तु को सर्वथा नित्य अथवा अनित्य ही मानना इत्यादि एकान्त मिथ्यात्व है। अधर्म को धर्म मानना विपरीत मिथ्यात्व है जैसे– यह मानना कि हिंसा से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है।

सच्चे देव-गुरु तथा झूठे देव-गुरु आदि सबकी समान विनय करना

विनय मिथ्यात्व है। सच्चे या झूठे धर्म में से किसी एक का निश्चय न होना संशय मिथ्यात्व है। जैसे–वस्त्र सहित वेष से मोक्ष होता है या निर्ग्रन्थ मुद्रा से, इत्यादि संशय करते रहना।

जीवादि पदार्थों को 'यही है, इसी प्रकार से है' इस तरह सही स्वरूप को न समझना अज्ञान मिथ्यात्व है।

इस तरह सामान्य से मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं। अधिक भेद करने से 363 भेद भी होते हैं अथवा विस्तार से असंख्यात लोकप्रमाण भेद भी हो जाते हैं।

श्रीवंदक की कथा

कानपुर के राजा धनदत्त का मंत्री श्रीवंदक बौद्धधर्मी था। एक दिन राजा और मंत्री राजमहल की छत पर कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे। अकस्मात् आकाशमार्ग से आते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनि दिखे। राजा ने विनय से नमस्कार करके उन्हें काष्ठासन पर विराजमान किया।

मुनिराज ने वहीं पर धर्मोपदेश दिया। उनसे प्रभावित होकर श्रीवंदक मंत्री ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। उस दिन श्रीवंदक अपने बौद्ध गुरुओं की वन्दना के लिये नहीं गया। यह देख बौद्ध गुरु ने उसे बुलाया, तब उसने नमस्कार नहीं किया और सारी बातें बता दीं। बौद्ध संघश्री ने उसे अनेकों उपायों से उपदेश देकर वापस बुद्धधर्मी बना लिया। बेचारा श्रीवंदक फिर संघश्री गुरु की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया और सम्यक्त्व से चलित हो गया।

दूसरे दिन राजसभा में राजा ने बड़े आनन्द से चारण ऋद्धिधारी मुनियों के आने का समाचार सुनाया। उनमें से कुछ लोग आश्चर्य से राजा की तरफ देख रहे थे। राजा ने अपनी बात के समर्थन के लिए मंत्री से कहा–मंत्री जी! कल मध्यान्ह की घटना का शुभ समाचार सुनाइये। मंत्री ने कहा–महाराज! मैंने तो मुनियों को नहीं देखा और यह बात सम्भव भी नहीं कि कोई मनुष्य आकाश में चल सके। पापी श्रीवंदक का इतना कहना ही था कि उसी समय उसकी दोनों आंखें मुनिनिंदा और मिथ्यात्व के पाप से फूट गयीं। उक्त घटना को देखकर राजा वगैरह ने जिनधर्म की खूब प्रशंसा की और सभी सभासदों ने प्रत्यक्ष में मिथ्यात्व का दुष्परिणाम देखकर जैनधर्म को धारण कर लिया।

पाठकों! अनंतकाल तक संसार में दुःख देने वाले मिथ्यात्व को दूर से ही छोड़ देना चाहिये और आत्मा को परमात्मा बनाने में समर्थ इस सम्यक्त्व-रत्न को ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्नावली-(1) मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? (2) गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व में क्या अंतर है ? (3) मिथ्यात्व के पांच भेद कौन से हैं ? (4) विपरीत और विनय मिथ्यात्व का लक्षण बताओ (5) मिथ्यात्व के अधिक से अधिक कितने भेद हो सकते हैं ? (6) श्रीवंदक और संघश्री का क्या संबंध था ? (7) श्रीवंदक की आंखें क्यों फूट गईं ? (8) मिथ्यात्व क्यों बुरा है ?

पाठ–6 सम्यग्दर्शन

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह आठ अंग से सहित होता है तथा इन अंगों के उल्टे शंकादि आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ता इन पच्चीस दोषों से रहित होता है अथवा छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नव पदार्थ इनका श्रद्धान करना भी सम्यग्दर्शन है।

सच्चे देव–जो दोष रहित वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हैं, वे ही आप्त–सच्चे देव कहलाते हैं अर्थात् सच्चे देव 46 गुण सहित और 18 दोष रहित होते हैं। इन्हें ही अर्हंत परमेष्ठी कहते हैं।

सच्चे शास्त्र–सर्वज्ञ देव के द्वारा कथित, पूर्वापर विरोध से रहित, सभी जीवों को हितकारी ऐसे सच्चे तत्त्वों का जिसमें उपदेश है, वे ही सच्चे शास्त्र हैं।

सच्चे गुरु–जो विषयों की आशा से रहित और परिग्रह के त्यागी हैं तथा ज्ञान, ध्यान व तप में लवलीन रहते हैं, वे निर्ग्रन्थ साधु ही सच्चे गुरु हैं।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं–(1) निःशंकित (2) निःकांक्षित (3) निर्वि-चिकित्सा (4) अमूढ़दृष्टि (5) उपगूहन (6) स्थितिकरण (7) वात्सल्य (8) प्रभावना।

इन आठ अंगों में से यदि एक भी अंग नहीं हो तो वह सम्यग्दर्शन संसार परम्परा का नाश नहीं कर सकता, जैसे एक अक्षर से भी हीन मंत्र विष को दूर नहीं कर सकता।

1–निःशंकित अंग एवं अंजन चोर

तत्त्व यही है, ऐसा ही है, अन्य प्रकार से नहीं हो सकता है, इस प्रकार दृढ़ता रखना, उसमें किंचित् शंका नहीं करना निःशंकित अंग है। इस अंग के फल से किसने क्या फल पाया, उसकी कथा बताते हैं–

कश्मीर देश के अंतर्गत विजयपुर के राजा अरिमथन के ललितांग नाम का एक सुन्दर पुत्र था। इकलौता बेटा होने से माता-पिता के अत्यधिक लाड़-प्यार से वह विद्याध्ययन नहीं कर सका और दुर्व्यसनी बन गया। युवा होने पर प्रजा को अत्यधिक त्रास देने लगा, तब राजा ने उसे देश से निकाल दिया।

वह चोर डाकुओं का सरदार बन गया और अंजनगुटिका विद्या सिद्ध करके दूसरों से अदृश्य होकर मनमाने अत्याचार करने लगा, जिसके कारण अंजन चोर नाम से प्रसिद्ध हो गया।

किसी समय वह राजगृह नगर में रात्रि में राजघराने से रत्नहार चुराकर भागा। तब कोतवालों ने उसकी विद्या नष्ट करके उसका पीछा किया। वह श्मशान में पहुंच गया। वहां पर एक वट वृक्ष में सौ सींकों के एक छींके पर एक सेठ बैठा था। वह बार-बार छींके से चढ़–उतर रहा था। चोर ने पूछा– यह क्या है ? सेठ ने कहा–"मुझे जिनदत्त सेठ ने आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करने को दी है किन्तु मुझे शंका है कि यदि विद्या सिद्ध नहीं हुई तो मैं नीचे शस्त्रों पर गिरकर मर जाऊंगा।

अंजन चोर ने कहा–भाई! तुम शीघ्र ही इसके सिद्ध करने का उपाय मुझे बता दो क्योंकि जिनदत्त सेठ मुनिभक्त हैं। उनके वचन कभी असत्य नहीं होंगे। सेठ ने विधिपूर्वक सब बता दिया। उसने शीघ्र ही ऊपर चढ़कर महामंत्र का स्मरण करते हुए एक साथ सभी डोरियां काट दीं। नीचे गिरते हुए अंजन चोर को बीच में ही आकाशगामिनी विद्या देवी ने आकर विमान में बैठा

लिया और बोली–आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ? अंजन चोर ने कहा कि मुझे जिनदत्त सेठ के पास पहुँचा दो । विद्या देवता ने सुमेरु पर्वत पर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर उसने चैत्यालयों की वंदना करते हुए जिनदत्त से मिल कर नमस्कार करके सारी बातें बता दीं।

अनंतर सम्पूर्ण पापों को छोड़कर देवर्षि नामक मुनिराज के पास दैगंबरी दीक्षा ले ली, तपश्चर्या के बल से चारणऋद्धि प्राप्त कर ली, पुनः केवलज्ञान प्राप्त कर अंत में कैलाश पर्वत से मोक्ष पधार गये। निःशंकित अंग के प्रभाव से अंजन निरंजन (सिद्ध) बन गये।

देखो बालकों! अंजन चोर जैसे पापी ने भी जिनवचनों में शंका न करके सच्चा सुख प्राप्त कर लिया। ऐसे ही तुम्हें भी जिनवचनों में स्वप्न में भी शंका नहीं करनी चाहिये।

2–निःकांक्षित अंग एवं अनंतमती

संसार के सुख कर्मों के अधीन हैं, विनश्वर हैं, दुःखों से मिश्रित हैं और पापों के बीज हैं ऐसे सुखों की आकांक्षा नहीं करना, निःकांक्षित अंग है। इसे पालन करने वाले का इतिहास बताते हैं–

चंपापुर के सेठ प्रियदत्त और सेठानी अंगवती के अनंतमती नाम की एक सुन्दर कन्या थी। एक समय अष्टान्हिका पर्व में सेठ ने धर्मकीर्ति मुनिराज के पास पत्नी सहित आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। युवावस्था में ब्याह के आयोजन में अनंतमती ने व्रत की दृढ़ता रखते हुए ब्याह से इन्कार कर दिया।

किसी समय अनंतमती अपनी सहेलियों के साथ बगीचे में झूला झूल रही थी कि एक विद्याधर उसके रूप पर मुग्ध होकर उसको (अनंतमती को) लेकर भागा। उसकी पत्नी के आ जाने से वह अनंतमती को भयंकर वन में छोड़कर चला गया।

वन में भील ने उसे ले जाकर शील भंग करना

चाहा किन्तु वनदेवी ने अनंतमती के शील की रक्षा की। पुनः इस भील ने अनंतमती को पुष्पक सेठ को सौंप दी। सेठ ने भी हार कर वेश्या को दे दी। वेश्या ने भी इसे सिंहराज नृप को दे दिया। राजा ने भी जब इसका शील भंग करना चाहा तब पुनः वनदेवी ने रक्षा की। अनंतर राजा ने उसे वन में भेज दिया। धीरे-धीरे अनंतमति अयोध्या में पद्मश्री आर्यिका के पास पहुँच गयी। कुछ दिन बाद वहाँ पिता से मिलाप हुआ किन्तु अनंतमती ने वापस घर न जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से समाधिपूर्वक मरण करके बारहवें स्वर्ग में देव हो गयी। देखो बालकों! भोगों की आकांक्षा नहीं करके अनंतमती ने देवपद पाया। आगे वह देव क्रम से मोक्षपद प्राप्त करेगा।

3—निर्विचिकित्सा अंग एवं उद्दायन राजा

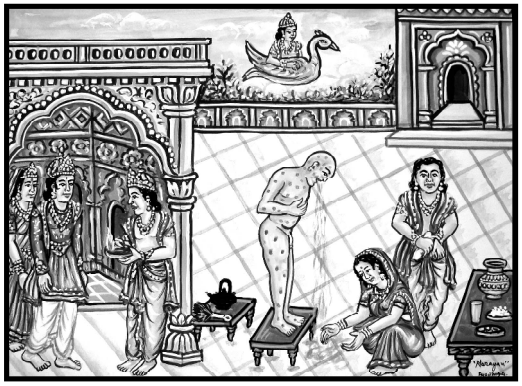

स्वभाव से अपवित्र किन्तु रत्नत्रय से पवित्र ऐसे मुनियों के शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना, इनके गुणों में प्रीति करना निर्विचिकित्सा अंग है। इस अंग में प्रसिद्ध राजा की कथा बताते हैं—

वत्सदेश के रौरवपुर के राजा उद्दायन बहुत ही धर्मनिष्ठ थे। उनकी रानी का नाम प्रभावती था। एक समय सौधर्म इन्द्र ने अपनी सभा में सम्यक्त्वगुण का वर्णन करते हुए निर्विचिकित्सा अंग में राजा उद्दायन की बहुत ही प्रशंसा की। इस बात को सुनकर एक वासव नामक देव यहां परीक्षा के लिए आ गया। वह कुष्ट रोग से गलित अत्यन्त दुर्गन्धि युक्त दिगम्बर मुनि का रूप बनाकर आहारार्थ निकल पड़ा।

उसकी दुर्गन्ध से तमाम श्रावक भाग खड़े हुए किन्तु राजा उद्दायन ने रानी सहित उसे बड़ी भक्ति से पड़गाहन कर विधिवत् आहारदान दिया। आहार के तत्काल बाद उस मायावी मुनि ने वमन कर दिया। उसकी दुर्गन्ध से सारे नौकर-चाकर पलायमान हो गये किन्तु राजा और रानी बड़ी विनय से मुनिराज की सुश्रुषा करते रहे तथा अपने दान की निंदा करने लगे। तब देव ने प्रगट होकर राजा की स्तुति—भक्ति करते हुए सौधर्म इन्द्र द्वारा की

गई प्रशंसा का हाल सुनाया। अनन्तर स्वस्थान को चला गया।

कालांतर में राजा विरक्त होकर मुनि बन गये और कर्म नाशकर मोक्ष चले गये।

बालकों! मुनियों के शरीर से ग्लानि नहीं करने वालों की लोक में प्रशंसा होती है तथा परम्परा से स्वर्ग-मोक्षरूप फल की भी प्राप्ति होती है।

4—अमूढ़दृष्टि अंग एवं रेवती रानी

दुःखों में पहुँचाने वाले मिथ्यामार्ग और मिथ्यामार्ग में चलने वालों में सम्मति नहीं देना, उनसे सम्पर्क नहीं रखना, उनकी प्रशंसा नहीं करना अमूढ़ दृष्टि अंग है। उसमें प्रसिद्ध रेवती रानी की कथा बताते हैं—

दक्षिण मथुरा में दिगम्बर गुरु गुप्ताचार्य के पास क्षुल्लक चन्द्रप्रभ रहते थे। उन्होंने आकाशगामिनी आदि विद्या को नहीं छोड़ने से मुनिपद नहीं लिया था। एक दिन वे तीर्थ वंदना के लिए उत्तर मथुरा जाने लगे, तब गुरु से आज्ञा लेकर पूछा भगवन्! किसी को कुछ कहना है ? गुरु ने कहा—वहाँ पर विराजमान सुव्रत मुनिराज को नमोस्तु और रेवती रानी को आशीर्वाद कहना। तीन बार पूछने पर भी गुरु ने यही कहा। तब क्षुल्लक महाराज वहाँ जाकर सुव्रत मुनिराज को नमोस्तु कहकर वहीं पर ठहरे हुए भव्यसेन मुनिराज के पास गये। उनकी चर्या को दूषित देखकर उनका अभव्यसेन नाम रखकर आ गये।

पुनः रेवती रानी की परीक्षा के लिए अपनी विद्या से पूर्व दिशा में ब्रह्मा का रूप बनाया। सब नगरवासी आ गये किन्तु रानी नहीं आई। पुनः उसने दक्षिण दिशा में जाकर पार्वती सहित महादेव का रूप बनाया। इस पर भी रेवती रानी के नहीं आने पर क्षुल्लक ने विद्या के बल से उत्तर दिशा में अरिहंत भगवान का समवशरण तैयार कर दिया। तब राजा वरुण ने कहा—प्रिये! अब तो चलो, जिनेन्द्र भगवान का समवशरण आया है। रानी

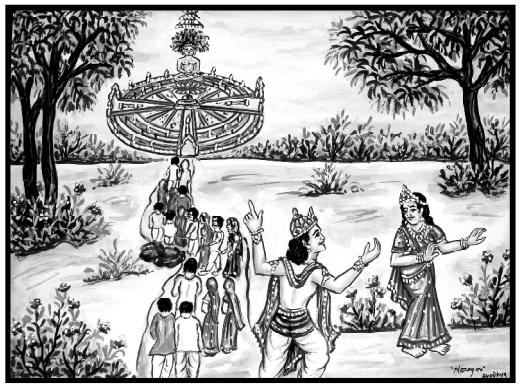

ने कहा–राजन्! चौबीस तीर्थंकर तो हो चुके, अब पच्चीसवें कहाँ से आये? यह कोई मायावी का जाल है। अनन्तर क्षुल्लक विद्या के बल से रोगी क्षुल्लक बनकर रानी के यहाँ आये। रानी ने विनयपूर्वक सुश्रूषा आदि की और आहार दान दिया। क्षुल्लक ने वमन कर दिया। तब रानी ने भक्ति से सफाई आदि की। तब क्षुल्लक जी विद्या को समेट कर वास्तविक रूप में गुरु के आशीर्वाद को सुनाकर रानी की प्रशंसा करते हुए चले गये।

देखो बालकों! रेवती रानी ने विद्या के द्वारा निर्मित चमत्कारों में अपना मन विचलित नहीं किया, इसलिये आज भी उसका नाम ग्रंथों में लिया जाता है।

5–उपगूहन अंग एवं जिनेन्द्रभक्त सेठ

यह मोक्षमार्ग स्वयं शुद्ध है अज्ञानी और असमर्थजनों के द्वारा कोई दोष हो जाने पर उनके दोषों को ढक देना (प्रकट नहीं होने देना) उपगूहन अंग है। इस अंग में प्रसिद्ध सेठ की कथा इस प्रकार है–

गौड़ देश के अंतर्गत ताम्रलिप्ता नगरी में एक जिनेन्द्रभक्त सेठ रहते थे। उनके घर में सातवीं मंजिल पर भगवान पार्श्वनाथ का चैत्यालय था जिनमें रत्नमयी प्रतिमा के ऊपर छत्र में बहुमूल्य वैडूर्यमणि रत्न लगा हुआ था। एक दिन चोरों के सरदार ने कहा कि सेठ के यहाँ का वैडूर्यमणि कौन ला सकता है? उनमें से एक सूर्यक नाम के चोर ने हामी भर ली। पुनः वह चोर मायावी क्षुल्लक बनकर वहाँ पहुँच गया और खूब उपवास आदि करते हुए सेठ जी के चैत्यालय में रहने लगा। किसी समय सेठ जी धन कमाने के लिये बाहर जाने लगे, तब क्षुल्लक जी की इच्छा न होते हुए भी उसको चैत्यालय की रक्षा का भार सौंप दिया। सेठ जी चले गये और उस दिन गांव के बाहर ही डेरा डाल दिया। इधर आधी रात में क्षुल्लक जी वैडूर्यमणि लेकर भागे। रत्न की चमक से नौकरों ने उनका पीछा किया, तब वे दौड़ते हुए गांव के बाहर उन्हीं सेठ के डेरे में घुस गये।

चोर! चोर! चोर! का हल्ला सुनते ही सेठ जी ने क्षुल्लक जी को देखा, तब नौकर से बोला–अरे भाई! मैंने तो क्षुल्लक जी से यह रत्न यहाँ मंगवाया था, तुम लोग इन्हें चोर क्यों कह रहे हो ? बेचारे नौकर चुपचाप चले गये।

इसके बाद सेठ जी ने क्षुल्लक जी को खूब फटकारा और कहा–पापी! तू धर्मात्मा बनकर ऐसा पाप करते हुए नरकों में जायेगा। पुनः रत्न लेकर उसे भगा दिया।

देखो! यदि सेठ जी बात बनाकर उस क्षुल्लक के दोष को नहीं छिपाते तो नौकर धर्म और धर्मात्माओं की हंसी उड़ाते। इसलिये किसी के दोष को ढक लेना चाहिये और उसे एकान्त में सुधारने की कोशिश करनी चाहिये।

6–स्थितिकरण अंग एवं वारिषेण मुनिराज

सम्यग्दर्शन से या सम्यक्चारित्र से यदि कोई चलायमान हो रहा हो तो धर्म के प्रेम से जैसे बने वैसे उसको धर्म में स्थिर कर देना, स्थितिकरण अंग है। इस अंग में प्रसिद्ध महापुरुष की कथा इस प्रकार है–

किसी समय वारिषेण मुनिराज पलासकूट ग्राम में आहारार्थ आये। मंत्री पुत्र पुष्पडाल ने उन्हें आहार दिया और उनको पहुँचाने के लिये कुछ दूर तक साथ चलने लगा। मुनिराज उसे स्थान तक साथ ले आये पुनः बचपन के मित्र होने से वैराग्य का उपदेश देकर दीक्षा दिला दी किन्तु पुष्पडाल मुनिराज अपनी स्त्री को नहीं भुला सके। धीरे-धीरे बारह वर्ष बीत गये।

किसी समय ये दोनों साधु राजगृही आ गये। अब पुष्पडाल अपनी स्त्री से मिलने के लिए निकले। मुनिराज वारिषेण उनके अंतरंग को समझकर साथ ही चल पड़े और वे सीधे अपने राजघराने में पहुँच गये। रानी चेलना ने वारिषेण पुत्र को घर आया देख कुछ शंकित होते हुए दो प्रकार के आसन लगा दिये। वारिषेण मुनिराज काष्ठासन पर बैठ गये और बोले माता! मेरी सभी स्त्रियों

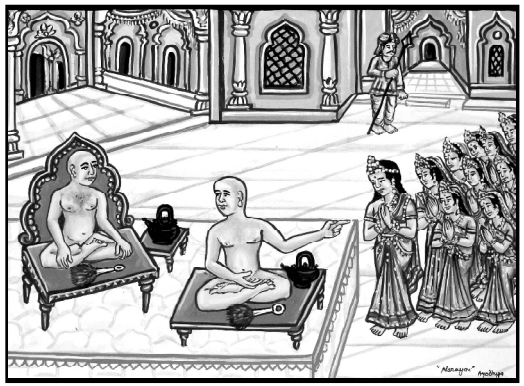

को बुलाओ। वे सब आ गईं, तब मुनिराज ने कहा–मित्र! ये मेरी बत्तीस स्त्रियां हैं और यह वैभव है तुम इसे ले लो, इसका उपयोग करो। इसी समय पुष्पडाल को वास्तविक वैराग्य हो गया।

उसने कहा–प्रभो! आपने मोक्षसुख के लिए इस अतुल वैभव को तृणवत् त्यागा है और मैं मूढ़ एक स्त्री के मोह को नहीं छोड़ सका। अनंतर वन में पहुँचकर वारिषेण ने उन्हें यथोचित प्रायश्चित्त से शुद्धकर वापस मुनिपद में स्थिर कर दिया। तब पुष्पडाल ने भी घोर तपश्चरण करके अपने आपको पवित्र बना लिया।

देखो! वारिषेण मुनिराज ने धर्म से डिगते हुए को कैसे स्थिर किया? इसी प्रकार हमें भी दूसरों का स्थितिकरण करना चाहिये।

7–वात्सल्य अंग एवं विष्णुकुमार मुनिराज

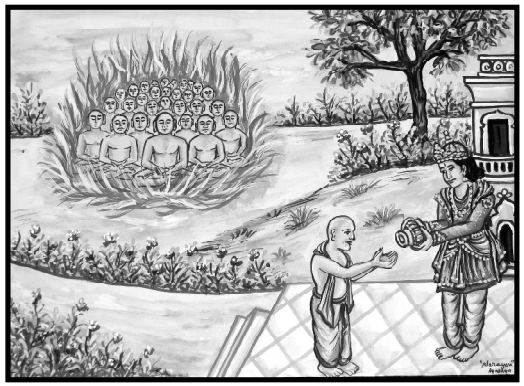

कपट भावों से रहित होकर सद्भावनापूर्वक सहधर्मी बन्धुओं का यथायोग्य आदर करना वात्सल्य अंग है। अर्थात् धर्मात्मा के प्रति एक सहजिक-अकृत्रिम स्नेह होना वात्सल्य भाव कहलाता है। इस अंग में प्रसिद्ध हुए मुनिराज की कथा इस प्रकार है–

हस्तिनापुर के राजा महापद्म अपने बड़े पुत्र पद्मराज को राज्य देकर छोटे पुत्र विष्णुकुमार के पास मुनि हो गये। राजा पद्म के चार मंत्री थे–बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रहलाद। किसी समय उन्होंने शत्रु राजा को जीतकर राजा पद्म से 'वर' प्राप्त किया था और उसे धरोहररूप में राजा के पास रख दिया था। एक समय अकंपनाचार्य सात सौ मुनियों के साथ आकर वहाँ बगीचे में ठहर गये। मंत्री जिनधर्म के द्वेषी थे। उन्होंने राजा से अपना वर देने को कहा और उनसे सात दिन तक राज्य मांग लिया। राजा को वर देना पड़ा। फिर क्या था, इन दुष्टों ने मुनियों को चारों तरफ से घेरकर बाहर से यज्ञ का बहाना करके आग लगा दी।

उधर मिथिला नगरी में रात्रि में श्रवण नक्षत्र कंपित होते देख श्रुतसागर आचार्य के मुख से हाहाकार शब्द निकला। पास में बैठे हुए क्षुल्लकजी ने सारी बात पूछी और उपसर्ग दूर होने का उपाय समझकर धरणीभूषण पर्वत पर आये। वहां विष्णुकुमार मुनि से कहा–भगवन्! आपको विक्रियाऋद्धि है अतः आप शीघ्र ही जाकर उपसर्ग दूर कीजिये।

मुनि विष्णुकुमार वहाँ आये और राजा पद्म से (भाई से) सारी बातें अवगत कर मुनिवेष छोड़कर बलि के पास वामन का रूप लेकर पहुँचे, जहाँ बलि राजा दान दे रहा था। बलि ने इनसे भी कुछ मांगने को कहा। वामन ने कहा–मुझे तीन पैर धरती दे दो। उसने कहा–आप अपने पैरों से ही नाप लें। बस! वामन विष्णुकुमार ने अपनी विक्रिया से एक पैर सुमेरु पर्वत पर रखा और दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रखा। तीसरा पैर उठाया किन्तु उसके रखने को जगह ही नहीं थी। इतने में सर्वत्र हाहाकार मच गया, पृथ्वी कंप गई, देवों के विमान परस्पर में टकरा गये। चारों तरफ से क्षमा करो, क्षमा करो, ऐसी आवाज आने लगी।

देवों ने आकर बलि को बांधकर विष्णुकुमार मुनि की पूजा की और सात सौ मुनियों का उपसर्ग दूर किया। विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों के प्रति वात्सल्य करके उनका उपकार किया। अंत में जाकर प्रायश्चित्त आदि लेकर अपनी आत्मा का कल्याण कर लिया। उसी दिन से रक्षा की स्मृति में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिवर्ष रक्षाबंधन पर्व मनाया जाता है।

देखो! विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों की रक्षा के लिये कैसे प्रयत्न किया! उसी प्रकार हमें भी धर्मात्माओं के प्रति सच्चा प्रेम होना चाहिये और संकट में तन-मन-धन से उनकी सहायता करनी चाहिये।

8–प्रभावना अंग एवं वज्रकुमार मुनिराज

चारों तरफ से फैले हुए अज्ञानरूपी अन्धकार को जैसे बने वैसे हटाकर जैनधर्म के माहात्म्य को फैलाना प्रभावना है। इस अंग में प्रसिद्धिप्राप्त मुनिराज की कथा इस प्रकार है–

मथुरा के राजा पूतिगंध की दो रानियाँ थीं। उर्विला रानी सम्यग्दृष्टि थी और दूसरी बुद्धदासी रानी बौद्ध धर्मानुयायी थी। रानी उर्विला हमेशा आष्टान्हिक पर्व में रथ यात्रा करके धर्म प्रभावना करती थी।

एक बार बुद्धदासी ने कहा–महाराज! पहले मेरा रथ निकलेगा। राजा

ने मोहवश यह बात मान ली। तब रानी उर्विला ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया और क्षत्रिय गुफा में विराजमान सोमदत्त तथा वज्रकुमार मुनि के पास पहुँचकर प्रार्थना करने लगी– भगवन्! धर्म की रक्षा कीजिये।

मुनिराज ने उसे आश्वासन दिया और उसी समय दर्शन के लिये आए हुए दिवाकर देव आदि विद्याधरों को प्रेरणा दी। तब गुरु की आज्ञा से उन विद्याधरों ने रानी उर्विला के रथ में अरहंत भगवान की प्रतिमा विराजमान करके आकाश मार्ग से खूब प्रभावनापूर्वक विशेष जुलूस के साथ रथ निकाला।

इस अतिशय को देखकर राजा पूतिगंध, बुद्धदासी आदि सभी जैन बन गये। सर्वत्र जैनधर्म की जय-जयकार हो गयी। वज्रकुमार मुनि ने जैनधर्म की प्रभावना करके अपने यश को अमर कर दिया।

देखो बालकों! वज्रकुमार मुनिराज के समान हमें भी धर्म की प्रभावना में तत्पर रहना चाहिये। इसमें रंचमात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं। इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है। इसके दो भेद हैं– व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीवादि तत्त्वों का और सच्चे देव, शास्त्र, गुरुओं का 25 दोष रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

सम्यक्त्व के पच्चीस मल दोष

आठ दोष– निःशंकित आदि आठ अंगों में से यदि एक अंग भी नहीं है तो वह सम्यग्दर्शन संसार परम्परा का नाश नहीं कर सकता। जैसे कि हीन

अक्षर मंत्र विष की वेदना को दूर नहीं कर सकता। इस सम्यक्त्व के पच्चीस मल दोष माने हैं।निःशंकित आदि से उल्टे शंका, कांक्षा आदि आठ दोष, ज्ञान आदि आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ता ऐसे पच्चीस दोष होते हैं।

शंका– जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर शंका करना। कांक्षा-भोगों की चाह करना। **विचिकित्सा**– मुनि आदि के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना। **मूढ़दृष्टि**– मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा करना। **अपगूहन**– सच्चे या झूठे दोष प्रकट करना। **अस्थितिकरण**– धर्म से गिरते हुए को स्थिर नहीं करना। **अवात्सल्य**– धर्मात्माओं में प्रेम न करके मत्सर भाव करना। **अप्रभावना**– धर्म की प्रभावना नहीं करना, ये आठ दोष हैं।

आठ मद– अपने ज्ञान का घमंड करना, वैसे ही अपनी पूजा का, कुल का, जाति का, बल का, ऐश्वर्य का, तपश्चरण का और रूप का घमण्ड करना, ऐसे आठ मद हैं।

छह अनायतन– मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र तथा इन तीनों को अलग-अलग सेवन करने वाले पुरुष ये छह अनायतन हैं। आयतन शब्द का अर्थ स्थान है। जैनमंदिर आदि धर्मस्थान आयतन हैं, इनसे विपरीत अनायतन हैं।

तीन मूढ़ता– मूढ़ भाव रखना मूढ़ता है जैसे नदी आदि के स्नान में धर्म मानना। इसके तीन भेद हैं। नदी– समुद्र में स्नान करने में धर्म मानना, पर्वत से गिरकर मरने में, अग्नि में जलकर मरने में धर्म मानना **लोकमूढ़ता** है। वर की इच्छा से रागद्वेष से मलिन देवों की उपासना करना **देवमूढ़ता** है। परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से युक्त संसार– समुद्र में डूबने वाले ऐसे पाखंडी साधुओं का सत्कार करना **पाखंडिमूढ़ता** है।

इन पच्चीस मल दोषों से रहित सम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में, नरकों में, कुभोगभूमि में, स्त्रीपर्याय और नपुंसक पर्याय में, भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषी देव-देवियों में तथा कल्पवासी देवियों में जन्म नहीं लेता है। यदि कदाचित् पहले नरक की आयु बांध ली है और पीछे सम्यक्त्व हुआ तो प्रथम नरक में ही जाता है।

सम्यक्त्वी जीव मरकर नीच घरानों में, दरिद्र कुल में जन्म नहीं लेता, अल्पायुधारी भी नहीं होता है। प्रत्युत उत्कृष्ट ऋद्धि सहित देव, इन्द्र, बलभद्र, चक्रवर्ती और तो क्या तीर्थंकर पद भी प्राप्त कर लेता है।

विशेष क्या, सम्यक्त्व के बिना न कोई आज तक मोक्ष गया है, न जा सकता है, इसलिए तीन लोक में यह सबसे उत्तम और हितकारी है। ऐसा समझकर प्रत्येक को मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्वी बनना चाहिये।

प्रश्नावली–(1) सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ? (2) आठ अंग के नाम बताओ। (3) सच्चे गुरु का लक्षण बताओ। (4) अंजन चोर पहले कौन था और उसका नाम अंजन चोर क्यों पड़ा ? (5) निःकांक्षित अंग का लक्षण बताओ। (6) अनंतमती ने क्या-क्या दुःख सहे हैं ? (7) निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध राजा की कथा सुनाओ। (8) मुनिराज ने रेवती रानी को आशीर्वाद क्यों दिया ? (9) जिनेन्द्रभक्त सेठ किस अंग में प्रसिद्ध हुए हैं और उन्होंने क्या विशेष कार्य किया ? (10) स्थितिकरण अंग का लक्षण बताकर वारिषेण मुनि ने कैसे स्थितिकरण किया सो समझाओ। (11) विष्णुकुमार मुनि ने मुनिवेष क्यों छोड़ा और रक्षाबंधन पर्व क्यों मनाया जाता है ? (12) प्रभावना अंग का लक्षण बताकर वज्रकुमार मुनि की कथा बताओ। (13) वात्सल्य अंग और स्थितिकरण अंग में क्या अंतर है? (14) इन आठों अंगों में से एक या दो अंग न हों तो क्या हानि है ? (15) सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों के नाम बताओ। (16) तीन मूढ़ता का पृथक्-पृथक् लक्षण बताओ। (17) सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ नहीं जाते हैं?

पाठ–7 अभक्ष्य

विजय–अभक्ष्य किसे कहते हैं ?

संजय–सुनो! हमें जैसा महाराज जी ने बतलाया है, वैसा ही बतलाता हूँ। जो पदार्थ भक्षण करने अर्थात् खाने योग्य नहीं होते हैं उन्हें अभक्ष्य कहते हैं। इनके पाँच भेद हैं–त्रस हिंसाकारक, बहुस्थावर हिंसाकारक, प्रमादकारक, अनिष्ट और अनुपसेव्य।

(1) जिस पदार्थ के खाने से त्रस जीवों का घात होता है, उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे–पंच उदुम्बर फल, घुना अन्न, अमर्यादित वस्तु जिनमें बरसात में फफून्दी लग जाती है ऐसी कोई भी खाने की चीजें, चौबीस घंटे के बाद का मुरब्बा, अचार, बड़ी, पापड़ और द्विदल आदि के खाने से त्रस जीवों का घात होता है। कच्चे दूध में या कच्चे दूध से बने हुए दही में दो दाल वाले मूंग, उड़द, चना आदि अन्न की बनी चीज मिलाने से

द्विदल बनता है।

(2) जिस पदार्थ के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है, उसे स्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे–प्याज, लहसुन, आलू, मूली आदि कन्दमूल तथा तुच्छ फल खाने से अनंतों स्थावर जीवों का घात हो जाता है।

एक निगोदिया जीव के शरीर में अनंतानंत सिद्धों से भी अनंतगुणे जीव रहते हैं[1] और एक आलू आदि में अनंत निगोदिया जीव हैं। इसलिये इन कन्दमूल आदि का त्याग कर देना चाहिए।

(3) जिसके खाने से प्रमाद या कामविकार बढ़ता है, वे प्रमादकारक अभक्ष्य हैं। जैसे शराब, भंग, तम्बाकू, गांजा और अफीम आदि नशीली चीजें। ये स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हैं।

(4) जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी अपने लिए हितकर न हों, वे अनिष्ट हैं। जैसे बुखार वाले को हलुवा एवं जुखाम वाले को ठण्डी चीजें हितकर नहीं हैं।

(5) जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हों, वे अनुपसेव्य हैं। जैसे–लार, मूत्र आदि पदार्थ।

अभक्ष्य बाईस भी माने गये हैं–

ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहुबीजा बैंगन संधान।
बड़ पीपर ऊमर कठऊमर, पाकर फल या होय अजान।।
कंदमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलित रस, ये बाईस अभक्ष्य बखान।।

ओला, दही बड़ा (कच्चे दूध से जमाये दही का बड़ा), रात्रि भोजन, बहुबीजा, बैंगन, अचार (चौबीस घण्टे बाद का) बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, अंजानफल, (जिसको हम पहचानते नहीं, ऐसे कोई फल-फूल-पत्ते आदि), कंदमूल (मूली, गाजर, आदि जमीन के भीतर लगने वाले), मिट्टी, विष (शंखिया, धतूरा आदि), आमिष–मांस, शहद, मक्खन, मदिरा, अतितुच्छ फल (जिसमें बीज नहीं पड़े हों, ऐसे बिल्कुल कच्चे छोटे-छोटे फल) तुषार–बर्फ और चलित रस (जिनका स्वाद बिगड़ जाये, ऐसे फटे हुये दूध आदि) ये सब अभक्ष्य हैं।

1. एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा सिद्धेहि अनंतगुणा।

विजय–मक्खन से तो घी बनता है, वह अभक्ष्य कैसे है ?

संजय–दही बिलौने के बाद मक्खन को निकालकर 48 मिनट के अंदर ही गर्म कर लेना चाहिये, अन्यथा वह अभक्ष्य हो जाता है। अथवा कच्चे दूध से भी जो यन्त्र से मक्खन निकाला जाता है, उसमें भी कच्चे दूध की मर्यादा के अन्दर मक्खन निकालकर जल्दी से गर्म करके घी बना लेना चाहिये।

बाजार की बनी हुई चीजों में मर्यादा आदि का विवेक न रहने से, अनछने जल आदि से बनाई होने से वे सब अभक्ष्य हैं। अर्क, आसव, शर्बत आदि भी अभक्ष्य हैं। चमड़े में रखे घी, हींग, पानी आदि भी अभक्ष्य हैं। इसलिए इन अभक्ष्यों का त्याग कर देना चाहिये।

प्रश्नावली–(1) अभक्ष्य के कितने भेद हैं? (2) किन-किन अभक्ष्यों में त्रस हिंसा होती है ? (3) स्थावर हिंसाकारक और अनुपसेव्य वस्तुओं के कुछ नाम गिनाओ? (4) बाईस अभक्ष्यों के नाम गिनाओ? (5) मक्खन अभक्ष्य कैसे है ?

पाठ–8 नरक के नाम और दुःख

अरिंजय–हे गुरुदेव! पहले भाग में हमने पढ़ा था कि सुभौम चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक गया है, सो यह सातवाँ नरक कहाँ है ? और इसका क्या नाम है ? लोग कहते हैं कि नरक में दुःख ही दुःख हैं, सो क्या यह सही बात है ?

मुनिराज– हाँ अरिंजय! मैं तुम्हें सब स्पष्टतया बतलाता हूँ।

यह पुरुषाकार लोक चौदह राजू ऊँचा है। नीचे तल भाग में पूर्व-पश्चिम से सात राजू चौड़ा है, ऊपर घटते-घटते बीच में एक राजू चौड़ा रह गया है। पुनः ऊपर बढ़ते हुए साढ़े तीन राजू की ऊँचाई पर पाँच राजू चौड़ा है। आगे पुनः घटते-घटते लोक के अंत में एक राजू चौड़ा रह जाता है। यह उत्तर दक्षिण में सर्वत्र सात राजू मोटा है।

बीच में एक राजू चौड़ी और मोटी तथा चौदह राजू लम्बी त्रसनाली है। इस त्रसनाली के बाहर केवल स्थावर जीव ही हैं, त्रस नहीं।

अरिंजय–राजू क्या है ?

मुनिराज–असंख्यातों योजनों का एक राजू होता है। अधोलोक सात

राजू प्रमाण ऊँचा है। नीचे एक राजू ऊँचाई तक निगोदिया जीवों का स्थान है। छह राजू में सात नरक हैं। ये नरक भूमियाँ नीचे-नीचे हैं। इनके नाम– (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा, (3) बालुकाप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूमप्रभा (6) तमःप्रभा और (7) महातमःप्रभा। इनके दूसरे नाम–(1) घम्मा (2) वंशा (3) मेघा (4) अंजना (5) अरिष्टा (6) मधवी और (7) माधवी हैं। इन पृथ्वियों के बीच-बीच में बहुत सा अन्तराल है, सातों नरकों में 84 लाख बिल हैं। ये चूहे आदि के बिल के समान औंधे मुख वाले हैं। इनमें जन्म लेते ही प्राणी धड़ाम से नीचे गिरता है।

अरिंजय–भगवन्! जन्म लेते ही गिरने से उसे बहुत चोट लगती होगी?

मुनिराज–अरे बेटा! वहाँ के दुःखों का वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। जन्म लेकर वहाँ की भूमि के स्पर्श से ही इतना दुःख होता है जैसे हजारों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। फिर तत्काल ही नारकी उसे करोंत से चीरने, भाले से मारने, अग्नि में पकाने आदि के दुःख देने लगते हैं।

अरिंजय–तब तो वे बहुत जल्दी मर जाते होंगे ?

मुनिराज–नहीं-नहीं! वहाँ पर बहुत लम्बी आयु होती है। जब तक वह पूरी न हो जावे, तब तक वे मर नहीं सकते हैं। उनके शरीर के तिल–तिल टुकड़े हो जाने के बाद भी पारे के समान मिलकर पुनः शरीर बन जाते हैं। उनकी वहाँ कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है। वे हाय-हाय करते हुए अपने किये हुए पापों का फल भोगते रहते हैं।

देखो बालकों! इन नरकों के दुःखों से डरकर कभी भी पापकर्म नहीं करना चाहिए।

प्रश्नावली–(1) निगोद स्थान कहाँ है ? (2) नरकों के नाम बताओ। (3) नारकी जीव आयु पूरी होने के पहले मरते हैं या नहीं ? (4) नारकियों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े होने पर क्या होता है ?

पाठ–9 स्वर्गों के नाम व सुख

अरिंजय–गुरुदेव! दूसरे भाग में हमने पढ़ा है कि पुरुरवा भील भी मांसादि का त्याग करने से पहले स्वर्ग में देव हो गया है, सो पहले स्वर्ग का नाम क्या है

मुनिराज–हां सुनो! मध्यलोक के ऊपर सात राजू में स्वर्ग आदि हैं। पहले सोलह स्वर्गों के नाम सुनो। सौधर्म-ईशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत। ये दो-दो स्वर्ग एक साथ ऊपर-ऊपर हैं। इन स्वर्गों के देवों में इन्द्र, सामानिक आदि भेद पाये जाते हैं। अर्थात् कोई देव राजा के समान इन्द्र हैं, कोई देव उनके परिवार के हैं, कोई देव उनके वाहन-हाथी बनते हैं, इस प्रकार का भेदभाव है अतः इन सोलह स्वर्गों को कल्प कहते हैं।

इन स्वर्गों के ऊपर नव ग्रैवेयक हैं, उनके नाम–सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, विशाल, सुमन, सौमन और प्रीतिकर।

इनके ऊपर नव अनुदिश हैं, उनके नाम–अर्चि, अर्चिमाली, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक और आदित्य।

इनके ऊपर पाँच अनुत्तर हैं, उनके नाम–विजय, वैजयन्त, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि।

नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों में सम्यग्दृष्टि महामुनि जन्म लेते हैं। चार अनुत्तर के देव तो मनुष्य के दो भव लेकर मोक्ष चले जाते हैं और सर्वार्थसिद्धि के देव नियम से एक भवावतारी ही होते हैं। देशव्रती तिर्यंच, श्रावक, वस्त्रधारी आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक आदि सोलह स्वर्ग के ऊपर नहीं जा सकते हैं। मुनि ही नवग्रैवेयक में जन्म लेते हैं।

अरिंजय–क्या स्वर्ग में व्यापार आदि करना पड़ता है ?

मुनिराज–नहीं, वहाँ तो तमाम कल्पवृक्ष हैं, उनसे सब उत्तम–उत्तम सम्पत्ति प्राप्त होती है। देवों के वैभव का तो ठिकाना ही नहीं है। वहां तो तमाम सम्पत्ति अपने आप मिल जाती है, मांगने की जरूरत ही नहीं है। वहां उपपाद शय्या पर 48 मिनट के भीतर ही भीतर में सोलह वर्ष के युवक के समान सुन्दर शरीर बन जाता है। वहां के शरीर में मल, मूत्र, हड्डी, चर्बी, खून, पसीना आदि नहीं है तथा रोग भी नहीं होते हैं।

अरिंजय–वहाँ पर कुछ दुःख भी हैं या नहीं ?

मुनिराज–हाँ! वहाँ के सभी सुखों को भोगकर आयु पूरी होने के बाद नियम से मरना पड़ता है और मध्यलोक में माता के गर्भ में आना पड़ता है, यह सबसे बड़ा दुःख है तथा मिथ्यादृष्टि देव अपने से बड़े देवों के वैभव को देखकर प्रायः ईर्ष्या किया करते हैं। देवों में यह मानसिक दुःख है।

अरिंजय–फिर ऐसी देवगति किस काम की, जहाँ से मरकर मनुष्य होना पड़े?

मुनिराज–इतना ही नहीं, बहुत से मिथ्यादृष्टि देव मरने के छह महीने पहले से ही बहुत दुःखी होते हैं। पुनः वे मरकर एकेन्द्रिय तक हो जाते हैं। हां! वहां के सम्यग्दृष्टि देव नियम से मनुष्य ही होते हैं और वे जल्दी से कर्म नाश कर मुक्त हो जाते हैं।

अरिंजय–पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान् की दीक्षा के समय मुझे एक बार लौकांतिक देव बनाया था। वे लौकांतिक देव कहां रहते हैं ?

मुनिराज–वे पांचवे स्वर्ग के ऊपर के भाग में रहते हैं। नियम से एक (मनुष्य) भव पाकर मोक्ष चले जाते हैं। लोक–संसार का अंत करने वाले होने से इनका यह लौकांतिक नाम सार्थक है। ये देव ब्रह्मचारी हैं, इसलिये देवर्षि मानकर अन्य देव भी इनकी पूजा करते हैं।

अरिंजय–तो क्या देवों के भी स्त्रियाँ होती हैं ?

मुनिराज–हां! एक-एक देव के हजारों देवांगनायें होती हैं। सोलह स्वर्ग के ऊपर देवांगनायें नहीं हैं, इसलिये ऊपर के देव भी ब्रह्मचारी रहते हैं, वे सब अहमिंद्र हैं, वहाँ राजा-प्रजा के समान भेद नहीं है, वे सब बहुत सुखी हैं।

अरिंजय–सिद्धशिला कहाँ है ?

मुनिराज–सर्वार्थसिद्धि के ऊपर सिद्धशिला है। वह सफेद है, अर्ध-चंद्राकार है। उसके भी कुछ ऊपर लोक के बिल्कुल अंत में सभी सिद्ध भगवान विराजमान हैं। वे अनंतानंत काल तक अपने अनंत सुख का अनुभव करते रहेंगे। उन सिद्धों का नाम लेते ही अनंतों पापों का पुंज नष्ट हो जाता है, ऐसे सिद्धों को हमारा बारम्बार नमस्कार होवे।

प्रश्नावली–(1) स्वर्ग कहाँ पर हैं और कितने हैं ? (2) नवग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर के नाम बताओ। (3) देवों का शरीर कैसा है ? (4) लौकांतिकदेव मोक्ष कब जाते हैं ? (5) सिद्ध शिला कैसी है ?

पाठ–10 पंचगुरुभक्ति

अष्ट महा शुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराजे हैं।।
अष्ट सुप्रवचन माता संयुत, श्रीआचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।1।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूं वंदूं, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे ।।2।।

पाठ–11 श्रावक के भेद

श्रावक के 3 भेद हैं– पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक।

'किसी भी निमित्त से मैं संकल्पपूर्वक त्रस जीव का घात नहीं करूंगा' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके, मैत्री आदि भावनाओं से सहित होते हुए हिंसा का त्याग करना पक्ष कहलाता है। इस पक्ष कर सहित श्रावक पाक्षिक कहलाता है। यह अष्ट मूलगुण और अणुव्रत आदि को अभ्यास रूप से पालन करता है। इनके अतिचारों को छोड़ने में असमर्थ रहता है किन्तु यह सच्चे धर्म के पक्ष का रखने वाला होता है।

कृषि आदि आरम्भ से होने वाले पापों को प्रायश्चित्त से दूर करके घर छोड़ने वाले गृहस्थ द्वारा दर्शन प्रतिमा से लेकर दशवीं प्रतिमा तक के व्रतों का पालन किया जाना चर्या है। जो निरतिचार श्रावक धर्मरूप चर्या का पालन करता है, वह नैष्ठिक या देशसंयमी कहलाता है।

चर्यासम्बन्धी दोषों को दूर करके ग्यारहवीं प्रतिमा का पालन करना आदि साधन कहलाता है। जिसका देशसंयम पूर्ण हो चुका है, जो आत्मध्यान में लीन होकर समाधिमरण करता है, उसको साधक कहते हैं।

विशेष–जो जीवनपर्यंत[1] के लिए मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बर

1. यावज्जीवनमिति (सा.ध.पृ. 186)

फलों का त्याग कर देता है और जिसका उपनयन संस्कार हो गया है अर्थात् जिसने रत्नत्रय के चिन्ह स्वरूप यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कर ली है, वही जिनधर्म को सुनने के लिए योग्य माना गया है।

इस प्रकार पाक्षिक श्रावक हुए बिना कोई भी श्रावक नहीं कहला सकता। पाक्षिक श्रावक का खान-पान भी मर्यादित और शुद्ध रहता है। वह बाजार में तथा सड़कों पर यद्वा-तद्वा चीजें लेकर नहीं खाता है। रात्रि में यदि चारों प्रकार के आहार का त्याग नहीं कर पाता है, तो औषधि और जलादि के सिवाय अन्न आदि का त्याग तो अवश्य कर देता है। वह सप्त व्यसनों में भी प्रवृत्ति नहीं करता है। ये सब पाक्षिक श्रावक के लक्षण समझना चाहिये।

प्रश्नावली–(1) श्रावक के कितने भेद हैं ? (2) पाक्षिक और नैष्ठिक श्रावक का लक्षण बताओ। (3) पाक्षिक श्रावक सप्त व्यसन में प्रवृत्ति करेगा या नहीं ?

पाठ–12 सात व्यसन

जिस काम को बार-बार करने की आदत पड़ जाती है, उसे व्यसन कहते हैं। यहाँ बुरी आदत को व्यसन कहा है अथवा दुःखों को व्यसन कहते हैं। यहाँ उपचार से दुःखों के कारणों को भी व्यसन कह दिया है। ये व्यसन सात हैं–

जुआ खेलन, मांस, मद, वेश्यागमन, शिकार।
चोरी, पररमणी रमण, सातों व्यसन निवार ।।

(1) जुआ खेलना

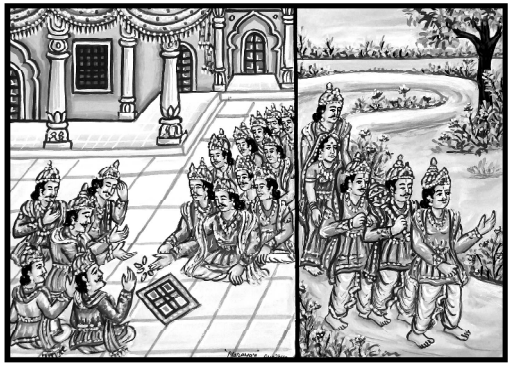

जिसमें हार-जीत का व्यवहार हो, उसे जुआ कहते हैं। यह रुपये-पैसे लगाकर खेला जाता है। यह सभी व्यसनों का मूल है और सब पापों की खान है। इस लोक में अग्नि, विष, सर्प, चोरादि तो अल्प दुःख

देते हैं किन्तु जुआ व्यसन मनुष्यों को हजारों भवों तक दुःख देता रहता है।

उदाहरण—हस्तिनापुर के राजा धृतराज के धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर ये तीन पुत्र थे। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए और पांडु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पांच पुत्र हुए। दुर्योधन आदि कौरव तथा युधिष्ठिर आदि पांडव कहलाते थे ये सब शामिल ही राज्य करते थे।

कुछ दिन बाद कौरवों की पांडवों के प्रति ईर्ष्या देखकर भीष्म पितामह आदि बुजुर्गों ने कौरवों और पांडवों में आधा-आधा राज्य बांट दिया किन्तु इस पर दुर्योधन आदि कौरव अशांति किया करते थे।

किसी समय कौरव और पांडव जुआ खेलने लगे, उस समय दैववश दुर्योधन से युधिष्ठिर हार गये, यहाँ तक कि अपना राज्य भी जुए में हार गये। तब दुर्योधन ने दुष्टतावश बारह वर्ष तक उन्हें वन में घूमने का आदेश दे दिया और दुःशासन ने द्रौपदी की चोटी पकड़कर घसीट कर भारी अपमान किया किन्तु शील शिरोमणि द्रौपदी का वह कुछ भी बिगाड़ न सका। पांचों पांडव द्रोपदी को साथ लेकर बारह वर्ष तक इधर-उधर घूमे और बहुत ही दुःख उठाये। इसलिये जुआ खेलना महापाप है।

बालकों! तुम्हें भी जुआ कभी नहीं खेलना चाहिये। इससे लोभ बढ़ता चला जाता है पुनः आगे जाकर धर्म और धन दोनों का सर्वनाश हो जाता है।

(2) मांस खाना

कच्चे, पके हुए या पकते हुए किसी भी अवस्था में माँस के टुकड़े या अण्डे में अनंतानंत त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। यह प्रत्यक्ष में ही महानिंद्य है, अपवित्र है। इसके छूने मात्र से ही अनंत जीवों की हिंसा हो जाती है। माँस खाने वाले महापापी कहलाते हैं और अंत में दुर्गति में चले जाते हैं।

उदाहरण—किसी समय पाँचों पांडव माता कुन्ती सहित श्रुतपुर नगर में एक वणिक के यहाँ ठहर गये। रात्रि में उसकी स्त्री का करुण क्रंदन

सुनकर माता कुन्ती ने कारण पूछा, उसने कहा–माता! इस नगर का बक नामक राजा मनुष्य का माँस खाने लगा था। तब नगर के लोगों ने उसे राज्य से हटा दिया। तब भी वह वन में रहकर मनुष्यों को मार-मारकर खाने लगा। तब लोगों ने यह निर्णय किया कि प्रतिदिन बारी-बारी से एक-एक घर में से एक- एक मनुष्य देना चाहिये, दुर्भाग्य से आज मेरे बेटे की बारी है।

इतना सुनकर कुन्ती ने भीम से सारी घटना बताई। प्रातः काल भीम ने उसके लड़के की बारी में स्वयं पहुँचकर बक राजा के साथ भयंकर युद्ध करके उसे समाप्त कर दिया। वह मरकर सातवें नरक में चला गया, जो कि वहाँ पर आज तक दुःख उठा रहा है।

देखो बालकों! माँस अंडे तो क्या, शक्कर की बनी हुई मछली आदि आकार की बनी मिठाई भी नहीं खानी चाहिये, उसमें भी पाप लगता है।

(3) मदिरापान करना

गुड़, महुआ आदि को सड़ाकर शराब बनाई जाती है। इसमें प्रतिक्षण अनंतानंत सम्मूर्छन त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं। इसमें मादकता होने से पीते ही मनुष्य उन्मत्त हो जाता है और न करने योग्य कार्य कर डालता है। इस मदिरापान से लोग माँस खाना, वेश्या सेवन करना आदि पापों से नहीं बच पाते हैं और सभी व्यसनों के शिकार बन जाते हैं।

उदाहरण—किसी समय भगवान नेमिनाथ की दिव्यध्वनि से श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि बारह वर्ष बाद शराब के निमित्त से द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारिका नगरी भस्म हो जावेगी। तब श्रीकृष्ण ने आकर सारी मद्य सामग्री और मदिरा को गाँव के बाहर कन्दराओं में फिकवा दिया। अनंतर बारह वर्ष बीत चुके हैं, ऐसी भ्रान्तिवश कुछ दिन पहले ही द्वीपायन मुनि द्वारिका के बाहर आकर ध्यान में लीन हो गये।

इधर शंबु आदि यादव कुमारों ने वनक्रीड़ा में प्यास से व्याकुल होकर कन्दराओं में संचित मदिरा को जल समझकर पी लिया। फिर

क्या था, वे सब उन्मत्त हुए आ रहे थे, मार्ग में द्वीपायन मुनि को देखकर उपसर्ग करना व बकना प्रारम्भ कर दिया।

मुनिराज ने बहुत कुछ सहन किया, अंत में उनके क्रोध की तीव्रता से तैजस पुतला निकला और धू-धू करते हुए सारी द्वारिका को भस्मसात् कर दिया।

उस समय वहाँ का दृश्य कितना करुणाप्रद्र होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है। मात्र श्री कृष्ण और बलभद्र ही वहां से बचकर निकल सके थे।

पाठकों! इस शराब व्यसन की हाँनि को पढ़कर इसका त्याग कर देना ही उचित है।

(4) वेश्यागमन करना

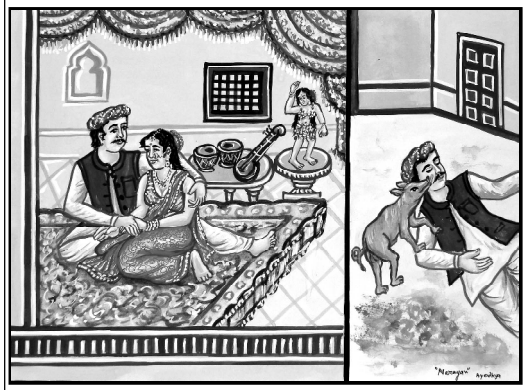

वेश्या के घर आना-जाना, उसके साथ रमण करना, वेश्या सेवन कहलाता है। जो कोई मनुष्य एक रात भी वेश्या के साथ निवास करता है वह भील, चाण्डाल आदि का झूठा खाता है, ऐसा समझना चाहिये क्योंकि वेश्या इन सभी नीच लोगों के साथ समागम करती है। वेश्यागामी लोग व्यभिचारी, लुच्चे, नीच कहलाते हैं। इस भव में कीर्ति और धन का नाश करके परभव में दुर्गति में चले जाते हैं।

उदाहरण—चम्पापुरी के भानुदत्त सेठ और भार्या देविला के चारुदत्त नाम का पुत्र था। वह सदैव धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने में अपना समय व्यतीत करता रहता था। वहीं के सेठ सिद्धार्थ ने अपनी पुत्री मित्रवती का विवाह चारुदत्त के साथ कर दिया किन्तु चारुदत्त अपने पढ़ने-लिखने में इतना मस्त था कि अपनी पत्नी के पास बहुत दिन तक गया ही नहीं।

तब चारुदत्त का चाचा रुद्रदत्त अपनी भावज की प्रेरणा से उसे गृहस्थाश्रम में फंसाने हेतु एक बार वेश्या के यहां ले गया और उसे चौपड़ खेलने के बहाने वहीं छोड़कर आ गया।

उधर चारुदत्त ने वसंतसेना वेश्या में बुरी तरह फंसकर कई करोड़ की सम्पत्ति समाप्त करके घर भी गिरवी रख दिया। अंत में वसंतसेना की माता ने चारुदत्त को धन रहित जानकर रात्रि में सोते में उसको बांधकर विष्टागृह (पाखाने) में डाल दिया। सुबह नौकरों ने देखा कि सूकर उसका मुख चाट रहे हैं। तब विष्टागृह से निकालकर उसकी घटना सुनकर सब उसे धिक्कारने लगे।

देखो! वेश्यासेवन का दुष्परिणाम कितना बुरा होता है। इसलिये इस व्यसन से बहुत ही दूर रहना चाहिए।

(5) शिकार करना

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से या अपना शौक पूरा करने के लिये अथवा कौतुक के निमित्त बेचारे निरपराधी, भयभीत, वनवासी पशु-पक्षियों को मारना शिकार कहलाता है। भय के कारण हमेशा भागते हुए और घास खाने वाले ऐसे मृगों को निर्दयी लोग कैसे मारते हैं ? यह एक बड़े ही आश्चर्य की बात है! इस पाप के करने वाले मनुष्य भी अनंतकाल तक संसार में दुःख उठाते हैं।

उदाहरण—उज्जयिनी के राजा ब्रह्मदत्त शिकार खेलने के बड़े शौकीन थे। एक दिन वन में ध्यानारूढ़ दयामूर्ति मुनिराज के निमित्त से उन्हें शिकार का लाभ नहीं हुआ। दूसरे दिन भी ऐसे ही शिकार न मिलने से राजा क्रोधित हो गया और मुनिराज आहारचर्या के लिए गये, तब उसने बैठने की पत्थर की शिला को अग्नि से तपाकर खूब गरम कर दिया।

मुनिराज आहार करके आये और उसी पर बैठ गये। उसी समय अग्निसदृश गरम शिला से उपसर्ग समझकर उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। उस गरम शिला से मुनिराज को असह्य वेदना हुई फिर भी वे आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हुए ध्यान अग्नि के द्वारा कर्मों का नाश करके अन्तकृत्केवली हो गया अर्थात् 48 मिनट के अंदर ही केवली होकर मोक्ष चले गये।

इधर सात दिन के अंदर ही राजा को भयंकर

कुष्ट हो जाने से वह अग्नि में जलकर मरकर सातवें नरक में चला गया, वहाँ से निकलकर तिर्यंचगति में दुःखों को भोगकर पुनः नरक में चला गया।

देखो बालकों! शिकार खेलने का फल भव-भव में दुःख देने वाला होता है, इसलिए इससे दूर ही रहना उचित है।

(6) चोरी करना

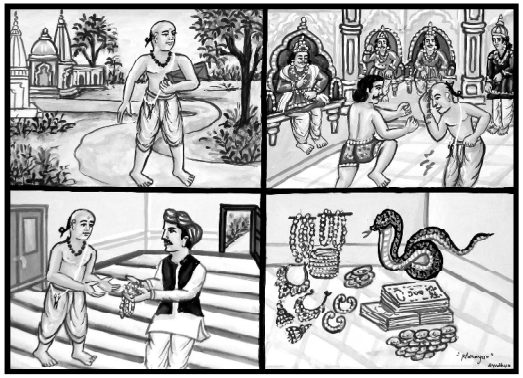

बिना दिये हुए किसी की कोई भी वस्तु ले लेना चोरी है। पराये धन को अपहरण करने वाले मनुष्य इस लोक और परलोक में अनेकों कष्टों को सहन करते हैं। चोरी करने वाले का अन्य मनुष्य तो क्या, खास माता-पिता भी विश्वास नहीं करते। चोर को राजाओं द्वारा भी अनेकों दण्ड मिलते हैं।

उदाहरण—बनारस में शिवभूति ब्राह्मण था, उसने अपनी जनेऊ में कैंची बाँध ली और कहता कि यदि मेरी जिह्वा झूठ बोल दे तो मैं उसी क्षण उसे काट डालूँ इसीलिए उसका नाम सत्यघोष प्रसिद्ध हो गया था।

एक बार सेठ धनपाल पाँच-पाँच करोड़ के चार रत्न उसके पास धरोहर में रखकर धन कमाने चला गया। जहाज में डूब जाने से बेचारा निर्धन हुआ सत्यघोष के पास अपने रत्न माँगने आया। सत्यघोष ने उसे पागल कहकर वहाँ से निकलवा दिया। छह महीने तक उस सेठ को रोते-चिल्लाते देखकर रानी ने युक्तिपूर्वक उसके रत्न सत्यघोष से मंगवा लिए। राजा ने सत्यघोष के लिए तीन दंड कहे–गोबर खाना या मल्लों के मुक्के खाना या सब धन देना। क्रम से वह लोभी तीनों दंड भोगकर मरकर राजा के भंडार में सर्प हो गया तथा कालांतर में अनेकों दुःख उठाये हैं।

देखो! चोरी करना बहुत ही बुरा है। बचपन में 2-4 रुपये आदि की या किसी की पुस्तक आदि की ऐसी छोटी-छोटी चोरी भी नहीं करनी चाहिये।

(7) पर-स्त्री सेवन करना

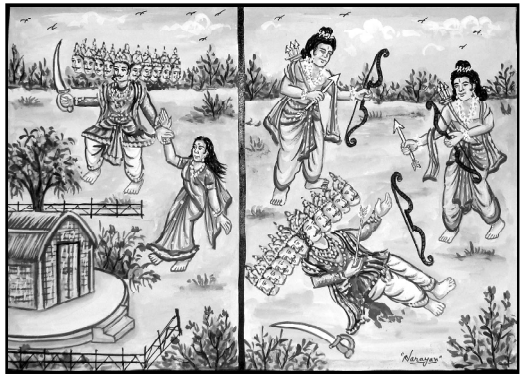

धर्मानुकूल अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय दूसरी स्त्रियों के साथ रमण करना पर-स्त्री सेवन कहलाता है। परस्त्री की अभिलाषामात्र से ही पाप लगता है, तो फिर उसके सेवन करने से महापाप लगता ही है।

उदाहरण—एक समय श्री रामचंद्र जी, सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक वन में ठहरे हुए थे। वहाँ पर खरदूषण के युद्ध में रावण गया था तब उसने सीता को देखा, उसके ऊपर मुग्ध होकर युक्ति से उसका हरण कर लिया, सभी के समझाने पर भी जब नहीं माना, तब रामचंद्र ने लक्ष्मण को साथ लेकर अनेकों विद्याधरों की सहायता से रावण से युद्ध ठान दिया। बहुत ही भयंकर युद्ध हुआ।

अंत में रावण ने अपने चक्ररत्न को लक्ष्मण पर चला दिया। वह चक्ररत्न लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ में आ गया। लक्ष्मण ने उस समय भी रावण से कहा कि तुम सीताजी को वापस कर दो। रावण नहीं माना, तब लक्ष्मण ने चक्ररत्न से रावण का मस्तक काट डाला, वह मरकर नरक में चला गया और वहाँ पर आज तक असंख्य दुःखों को भोग रहा है।

देखो! जब पर-स्त्री की अभिलाषामात्र से रावण नरक में चला गया, तब जो पर-स्त्री सेवन करते हैं वे तो महान दुःख भोगते ही हैं, ऐसा समझकर इन पापों से सदैव बचना चाहिये।

प्रश्नावली–(1) सात व्यसन के नाम बताओ। (2) पांडवों को जुआ का क्या फल मिला ? (3) माँस खाने में क्या दोष है और उसका फल किसको मिला है ? (4) क्या यादव कुमारों ने मदिरा जानकर पी थी ? (5) वेश्यासेवन से क्या-क्या हाँनि होती है ? (6) राजा ब्रह्मदत्त ने मुनि पर उपसर्ग क्यों किया ? (7) अंतकृत केवली का क्या लक्षण है ? (8) चोरी करने से क्या हानि होती है ? (9) सेठ धनपाल छह महीने तक क्यों रोता चिल्लाता रहा? (10) पर-स्त्री सेवन का क्या मतलब है ? (11) रावण को पर-स्त्री हरण का क्या फल मिला? (12) वेश्या सेवन और पर-स्त्री सेवन में क्या अंतर है ?

पाठ-13 आलोचना पाठ

-दोहा-

वंदों पाँचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्ध करन के काज ।।1।।

-छंद-

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृतिकाज, तुम शरण लही जिनराज ।।2।।

इक बे ते चौ इन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणाधारी, निर्दयी ह्वै घात विचारी ।।3।।

समरंभ समारंभ आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ।।4।।

शत-आठ जु इन भेदन तें, अघ कीने पर छेदनतें।
तिनकी कहूं कौलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ।।5।।

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतें नहिं जात कहीने ।।6।।

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया कर भीनी ।
या विधि मिथ्यात्व बढ़ायो, चहुँगति में दोष उपायो ।।7।।

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सों दृग जोरी।
आरम्भ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने ।।8।।

सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय सेवन को।
बहु कर्म किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ।।9।।

फल पंच उदुम्बर खाए, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुविसन दुखकारे ।।10।।

दुईबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ।।11।।

अनंतानुबंधी सो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडष सुनिये ।।12।।

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संजोग।
पन बीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ।।13।।

निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया।
फिर जाग विषय बन धायो, नाना विधि विषफल खायो ।।14।।

आहार निहार विहारा, इनमें नहीं जतन विचारा ।
बिन देखे धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया ।।15।।

तब ही परमाद सतायो, बहु विधि विकल्प उपजायो।
कुछ सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है ।।16।।

मर्यादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन्न भिन्न अब कैसे कहिए तुम ज्ञान विषैं सब पइए ।।17।।

हा! हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ।।18।।

पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखा ते पवन बिलोल्यो ।।19।।

हा! हा! मैं अदयाचारी, बहु हरित जु काय विदारी ।
या मधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनन्दा ।।20।।

हा! हा! परमाद बरसाई, बिन देखे अग्नि जलाई ।
ता मध्य जीव जे आए, तेहू परलोक सिधाए ।।21।।

बीधो अन रात पिसायो, ईधन बिन शोध जलायो ।
झाड़ू ले जांगा बुहारी, चींटी आदिक जीव विदारी ।।22।।

जल छान जिवानी कीनी, सोहू पुनि डार जू दीनी।
नहीं जल थानक पहुंचाई किरिया बिन पाप उपाई ।।23।।

जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाए, कोसन के जीव मराए ।।24।।

अन्नादिक शोध कराई ता मध्य जीव निसराई।
तिनको नहिं जतन करायो गलियारे धूप डरायो ।।25।।

पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरम्भ हिंसा साजे।
किए तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ।।26।।

इत्यादिक पाप अनंता हम कीने श्री भगवंता।
सन्तति चिरकाल उपाई, वाणी ते कही न जाई ।।27।।

ताको जु उदय अब आयो नाना विधि मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुःख पावे वच तैं कैसे करि गावें ।।28।।

तुम जानत केवलज्ञानी दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है बिन तारण विरद सही है ।।29।।

इक गाँवपती जो होवे सो भी दुखिया दुःख खोवे ।
तुम तीन भुवन के स्वामी दुःख मेटो अंतरयामी ।।30।।

द्रौपदि को चीर बढ़ायो सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी दुःख मेटो अंतरयामी ।।31।।

मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित कर स्वामी, दुःख मेटो अंतरयामी ।।32।।

इन्द्रादिक पद नहीं चाहूं विषयन में नाहिं लुभांऊ ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे ।।33।।

–दोहा–

दोष रहित जिनदेवजी निज पद दीजे मोय।
सब जीवन को सुख बढ़े आनंद मंगल होय।।34।।

अनुभव माणिक पारखी जौहरी आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये चरण शरण आनंद।।35।।

प्रश्नावली–(1) समरंभ से केवलज्ञानी तक (चौथी, पांचवां) श्लोक सुनाकर उसका अभिप्राय समझाओं। (2) पांच मिथ्यात्व और पांच पाप के नाम बताओ। (3) बीधो अन से-बिन पाप उपाई तक इन (बाईसवें और तेईसवें) श्लोकों का अर्थ करो (4) तेंतीसवें श्लोक का क्या अभिप्राय है ? (5) अलोचना करने वाले ने क्या वर मांगा है ? (6) इस आलोचना पाठ के रचयिता कौन हैं ?

पाठ–14 आठ कर्म

जो आत्मा को परतंत्र करता है, दुःख देता है, संसार परिभ्रमण कराता है उसे कर्म कहते हैं। अनादिकाल से जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है। इन दोनों का अस्तित्व स्वतः सिद्ध है।

'मैं' इस अनुभव से जीव जाना जाता है और जगत में कोई दरिद्री है, कोई धनवान है इस विचित्रता से कर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

जैसे अग्नि से तपाया हुआ लोहे का गोला पानी में डालते ही सब तरफ से पानी को खींच लेता है, वैसे ही संसारी आत्मा के मन-वचन-काय की क्रियाओं से प्रतिक्षण सभी आत्मप्रदेशों में कर्म आते रहते हैं।

कर्म के मूल दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। पुद्गल के पिंड को 'द्रव्यकर्म' कहते हैं और उसमें जो फल देने की शक्ति है, वह भावकर्म है अथवा कर्म के निमित्त से जो आत्मा के रागद्वेष, अज्ञान आदि भाव होते हैं, वह भावकर्म है।

कर्म के मूल आठ भेद भी होते हैं—(1) ज्ञानावरण (2) दर्शनावरण (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र और (8) अंतराय।

(1) ज्ञानावरण–जो आत्मा के ज्ञान गुण को ढकता है, उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

(2) दर्शनावरण–जो आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है, उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

(3) वेदनीय–जो आत्मा को सुखदुख देता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

(4) मोहनीय–जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

(5) आयु–जो जीव को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोके रखता है, उसे आयु कर्म कहते हैं।

(6) नाम–जिससे शरीर और अंगोपांग आदि की रचना होती है, उसे नाम कर्म कहते हैं।

(7) गोत्र–जिससे जीव उच्च अथवा नीच कुल में पैदा होता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

(8) अंतराय–जो दान, लाभ आदि में विघ्न डालता है, उसे अंतराय कर्म कहते हैं।

विशेष–इन आठ कर्मों में भी घातिया-अघातिया के भेद से दो भेद होते हैं। जो जीव के गुणों का घात करते हैं, वे घातिया कर्म हैं। जो पूर्णतया गुणों का घात न कर सकें वे अघातिया कर्म हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार घातिया कर्म हैं, शेष चार अघातिया कर्म हैं।

प्रश्नावली–(1) कर्म किसे कहते हैं ? (2) कर्म के दो भेद कौन से हैं और उनके लक्षण क्या हैं ? (3) वेदनीय, नाम, गोत्र और अंतराय इन कर्मों के लक्षण बताओ। (4) अघातिया कर्मों के नाम बताओ ।

पाठ–15 कर्म आस्रव के कारण

कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। इसके दो भेद हैं– पुण्यास्रव और पापास्रव। अर्हंत भक्ति, जीवदया आदि क्रियारूप शुद्धयोग से पुण्यास्रव और जीवहिंसा झूठ आदि क्रियारूप अशुभयोग से पापास्रव होता है।

ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण–ज्ञानी से ईर्ष्या करना, ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, अपने ज्ञान को छिपाना, दूसरों को नहीं बताना, गुरु का नाम छिपाना, ज्ञान का गर्व करना इत्यादि कार्यों से ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होता है।

दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण–जिनेन्द्र भगवान के दर्शनों में विघ्न डालना, किसी की आंख फोड़ना, दिन में सोना, मुनियों को देखकर ग्लानि करना, अपनी दृष्टि का गर्व करना इत्यादि से दर्शनावरण कर्म का आस्रव होता है।

वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण–अपने को अथवा दूसरे को दुःख उत्पन्न करना, शोक करना, रोना, विलाप करना, जीववध करना इत्यादि कार्यों से असाता वेदनीय का आस्रव होता है।

इससे विपरीत जीवदया करना, दान करना, संयम पालना, वात्सल्य करना, वैयावृत्ति करना आदि कार्यों से साता वेदनीय का आस्रव होता है।

मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण–सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म

में दोष लगाना आदि से दर्शनमोहनीय का आस्रव होता है।

कषायों की तीव्रता रखना, चारित्र में दोष लगाना, मलिन भाव करना, आदि से चारित्र मोहनीय का आस्रव होता है।

आयु कर्म के आस्रव के कारण–बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह से नरकायु का आस्रव होता है। मायाचारी से तिर्यंचायु, थोड़ा आरम्भ तथा थोड़े परिग्रह से मनुष्यायु और सम्यक्त्व, व्रतपालन, देशसंयम, बालतप आदि से देवायु का आस्रव होता है।

नामकर्म के आस्रव के कारण–मन, वचन, काय को सरल रखना, धर्मात्मा से विसंवाद नहीं करना, षोडश कारण भावना आदि से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है। इससे उल्टे कुटिल भाव, झगड़ा, कलह आदि से अशुभ नाम कर्म का आस्रव होता है।

गोत्र कर्म के आस्रव के कारण–दूसरे की निंदा और अपनी प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढकना और अपने झूठे गुणों का बखान करना, मद करना आदि से नीच गोत्र का आस्रव होता है। दूसरे की प्रशंसा करना, अपनी निंदा करना, दूसरे के दोषों को ढकना, अपने दोषों को प्रगट करना, गुरुओं के प्रति नम्र प्रवृत्ति रखना, विनय करना आदि से उच्च गोत्र का आस्रव होता है।

अंतराय कर्म के आस्रव के कारण–दान देने वाले को रोक देना, आश्रितों को धर्म साधन नहीं करने देना, मंदिर के द्रव्य को हड़प जाना, दूसरों की भोगादि वस्तु या शक्ति में विघ्न डालना आदि से अंतराय का आस्रव होता है।

इन कारणों से आये हुए कर्म पुद्गल परमाणु आत्मा के साथ एकमेक हो जाते हैं उसी का नाम बंध है। इसलिए ये सभी कारण कर्मबंध के भी कारण हो जाते हैं।

तीव्र, मंद आदि भावों से होने वाला आस्रव योग और कषाय आदि के निमित्त से 108 भेदरूप भी माना गया है।

समरंभ, समारंभ, आरंभ तीन, मन, वचन, काय ये तीन, कृत, कारित, अनुमोदना ये तीन और क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय। इनका परस्पर गुणा करने से 108 भेद हो जाते हैं।

जैसे–समरंभ आदि तीनों में मन आदि तीन का गुणा करने से 9, पुनः कृत आदि तीन से गुणा करने से 9×3=27 पुनः चार कषाय से गुणने से 27×4=108 भेद हो जाते हैं। इनके निमित्त से जीव कर्मों का संचय करता रहता है।

समरंभ—हिंसादि करने का प्रयत्न या संकल्प। समारंभ—हिंसादि करने के साधन जुटाना। आरम्भ—हिंसादि पाप शुरू कर देना। कृत—स्वयं करना। कारित—दूसरे से कराना। अनुमोदना—करते हुये दूसरों को अनुमति देना। बाकी के अर्थ स्पष्ट हैं।

बंध के कारण–मिथ्यादर्शन-1, अविरति-12, प्रमाद-15, कषाय-25 और योग-15, ये सब कर्म बंध के कारण हैं।

प्रश्नावली–(1) ज्ञानावरण, वेदनीय, मोहनीय, गोत्र और अन्तराय कर्मों के आस्रव के कारण बताओ। (2) आस्रव के 108 भेद कैसे होते हैं ? (3) कृत, कारित अनुमोदना के लक्षण बताओ। (4) बंध के कारण कितने है ?

पाठ–16 पंचकल्याणक

कोई भी श्रावक या मुनि दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाते हुए केवली भगवान या श्रुतकेवली के पादमूल में तीर्थंकर नामक कर्म प्रकृति के बंध कर लेते हैं। आयु पूर्ण होने पर मरकर स्वर्ग में देव हो जाते हैं। यदि किसी ने नरक की आयु बाँध ली है, फिर सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति बाँधी है तो वे मरकर नरक में भी जाते हैं, जैसे राजा श्रेणिक।

गर्भ कल्याणक–वे तीर्थंकर प्रकृति वाले जीव जब माता के गर्भ में आने वाले होते हैं, उससे छह महीने पहले ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर, स्वर्ग से आकर नगरी को सजाकर माता के आँगन में प्रतिदिन रत्नों की वर्षा करता है।

किसी समय रात्रि के पिछले भाग में माता को सोलह स्वप्न होते हैं। वे प्रातः अपने पति से स्वप्नों का फल पूछती है। राजा कहते हैं, कि हे देवी! तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर का जीव आ गया है। उसी समय स्वर्ग से इन्द्र आदि देव आकर भगवान के माता-पिता की पूजा करके उत्तम वस्त्राभूषण भेंट देकर चले जाते हैं। श्री, ह्री आदि देवियाँ माता की सेवा करते हुये खूब तत्त्व-चर्चायें और गूढ़ प्रश्न करते हुये माता का मनोरंजन करके पुण्य बंध करती रहती हैं। बालक के गर्भ में रहने से माता को या बालक को किंचित् कष्ट नहीं होता है।

जन्म कल्याणक–जब भगवान का जन्म होता है, उसी समय चारों प्रकार के देवों के यहां घण्टे, सिंहनाद, शंख और नगाड़े बिना बजाये ही बजने लगते हैं। इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है। उनके मुकुट झुक जाते हैं और कल्पवृक्षों से पुष्पों की वर्षा होने लगती है। तब अवधिज्ञान द्वारा भगवान के जन्म को जानकर सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी और चारों प्रकार के असंख्यातों देवों सहित ऐरावत हाथी पर बैठकर आते हैं। नगरी की तीन प्रदक्षिणा देकर इन्द्राणी द्वारा प्रसूतिगृह में लाये गये भगवान शिशु को लेकर हाथी पर बैठकर सुमेरु पर्वत पर जाते हैं। वहाँ पांडुक शिला के सिंहासन पर भगवान को पूर्वमुख करके बिठाते हैं। क्षीर समुद्र से देवों द्वारा भर-भरकर लाये 1008 रत्नमयी कलशों से सौधर्म इन्द्र आदि देवगण भगवान का अभिषेक करते हैं। उन्हें वस्त्र आभूषणों से सजाकर उनका नाम रखकर वापस लाकर माता-पिता को सौंपकर बहुत ही उत्सव करते हुए सभी देव अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। भगवान की सेवा के लिये देवों को नियुक्त कर जाते हैं। गृहस्थाश्रम में तीर्थंकरों के लिये भोजन-वस्त्र आदि सम्पूर्ण सामग्री स्वर्ग से आती है।

तप कल्याणक–जब तीर्थंकर भगवान को किसी निमित्त से वैराग्य हो जाता है उसी समय लौकांतिक देव आकर वैराग्य की अत्यधिक प्रशंसा करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं। चारों प्रकार के देव आकर भक्ति करते हैं। भगवान अपने बन्धु वर्गों से अनुमति लेकर देवों द्वारा लाई गई पालकी पर बैठ जाते हैं। पालकी को पहले भूमिगोचरी राजा उठाते हैं पुनः विद्याधर राजा उठाते हैं पुनः देव लेकर वन में पहुँचते हैं। वहाँ रत्नशिला पर पूर्व या उत्तर दिशा में मुँह करके "नमः सिद्धेभ्यः" मंत्रोच्चारणपूर्वक सम्पूर्ण वस्त्राभूषणों को उतारकर वे केशलोंच करते हैं और दिगम्बर दीक्षा लेकर ध्यान में लीन हो जाते हैं। इन्द्र उन केशों को रत्न पिटारे में ले जाकर क्षीरसमुद्र में क्षेपण कर देता है।

केवलज्ञान कल्याणक–तपश्चरण करते हुए भगवान शुक्लध्यान में स्थिर होकर घातिया कर्मों का नाश कर देते हैं। तब लोकालोक को एक साथ जानने वाला केवलज्ञान प्रकट हो जाता है। उस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर आकर आकाश में अधर बहुत ही सुन्दर समवसरण की रचना करता है। उसमें चारों तरफ चार मानस्तम्भ रहते हैं जिनके दर्शन करते ही

मिथ्यादृष्टियों का मान गल जाता है। समवसरण में अगणित विभूतियाँ रहती हैं। बारह सभाओं में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, असंख्यातों देव, देवियाँ और तिर्यंचगण बैठकर उपदेश सुनते हैं। भगवान सिंहासन पर ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान रहते हैं। भगवान का उपदेश 718 भाषाओं में होता है। भगवान के विहार के समय देवगण भगवान के चरणों के नीचे स्वर्णमय कमलों की रचना करते जाते हैं। केवलज्ञान होने के पश्चात् भगवान का पृथ्वी से ऊर्ध्वगमन होता है।

निर्वाण कल्याणक–जब भगवान की आयु समाप्त होने को होती है, तब समवसरण विघटित हो जाता है। भगवान ध्यान में लीन हो जाते हैं, बचे हुए शेष अघातिया कर्मों का नाश होते ही उनकी आत्मा एक समय में सीधे सिद्धशिला के ऊपर लोक के अग्रभाग में विराजमान हो जाती है। उसी समय ही चारों प्रकार के देव आकर बड़ी भक्ति से शरीर का अग्नि संस्कार करते हैं और भस्म को ललाट में लगाकर अपना जन्म सफल मानते हैं।

प्रश्नावली–(1) भगवान के गर्भ कल्याणक में क्या-क्या विशेषतायें होती हैं? (2) शिशु भगवान का पांडुक शिला पर अभिषेक कौन-कौन करते हैं ? (3) गृहस्थाश्रम में तीर्थंकरों के लिए भोजन वस्त्र कहाँ से आते हैं ? (4) भगवान के तप कल्याणक का वर्णन करो। (5) समवसरण में भगवान का उपदेश कितनी भाषाओं में होता है ? (6) मोक्ष कल्याणक का वर्णन करो।

पाठ–17 आत्मा का स्वभाव

सुधा–भादों की अनंत चतुर्दशी को मेरी मां ने मुझे जबरदस्ती उपवास कराया और जब मैं भूख-प्यास की बाधा से रात्रि में बहुत घबराने लगी, तब मां बोली कि बेटी! तुम यह भावना करो कि शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। आत्मा को भूख-प्यास नहीं लगती है। ऐसी भावना करने से ही तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा, तुम स्त्रीपर्याय से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर सकती हो, अन्यथा शरीर को सुखी बनाते रहने से तो अनंत संसार में ही रुलना पड़ेगा, तो मेरी समझ में तो आता नहीं है कि शरीर से आत्मा भिन्न कैसे है?

अध्यापिका–सुधा, तुम्हारी माँ ने बहुत ठीक कहा है। देखो! जीव का

लक्षण है चेतना। उसके दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। इसलिये जानना, देखना यह आत्मा का स्वभाव है। इस आत्मा में अनंत गुण भरे हुए हैं जैसे–अनंत-सुख, अनंतवीर्य आदि।

आत्मा के जन्म, मरण, बुढ़ापा, रोग, शोक कुछ भी नहीं है। वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक भी नहीं है। नारकी, तिर्यंच, देव और मनुष्य भी नहीं है, वह तो परमब्रह्म स्वभावी है। इस देहरूपी देवालय में ऐसा भगवान आत्मा विराजमान है।

किन्तु यह शरीर अत्यन्त अपवित्र, सात धातु और उपधातु से बना हुआ है, नष्ट होने वाला है, अचेतन है, ज्ञान-दर्शन से शून्य है। जन्म-मरण शरीर को होते हैं तथा स्त्री पुरुषादि अवस्थायें, मनुष्य आदि शरीर ये सब पुद्गल की पर्यायें हैं। इस प्रकार से जब यह जीव दृढ़ श्रद्धान करके बार-बार अपने स्वरूप का विचार करता है, तब शरीर से ममता घटती जाती है और वह चारित्र धारण कर कठिन से कठिन तपश्चरण करके कर्मों का नाश कर पूर्ण सुखी हो जाता है।

सुधा–बहन जी! जब देह देवालय में अपनी आत्मा ही भगवान रूप है फिर तपश्चरण करने की क्या जरूरत है ?

अध्यापिका–देखो! जैसे—दूध में घी है ऐसा जिसे विश्वास है, वह महिला उसमें जामन डालकर दही बनाती है फिर दही का बिलोना करके मक्खन निकालकर तपाकर उसका घी बना लेती है। ऐसे ही प्रत्येक जीव के शरीर में भगवान आत्मा शक्तिरूप से मौजूद है। सम्यक् चारित्र और तप के द्वारा उस आत्मा में लगे हुए कर्मों को हटाकर आत्मा के अनंत गुणों को प्रकट कर परमात्मा बनाया जाता है। कुछ लोग संसार अवस्था में ही अपनी आत्मा को परमात्मा मानकर चारित्र नहीं धारण करते हैं वे वास्तव में मिथ्यादृष्टि हैं। संसार अवस्था में तो आत्मा शक्तिरूप से परमात्मा है, इस बात को समझने के लिये तुम नयों को अवश्य समझो।

सुधा–ये नय क्या हैं ?

अध्यापिका–अनंत गुण वाली वस्तु के एक-एक अंश को बतलाने वाले कथन को नय कहते हैं। इसके दो भेद हैं–निश्चय और व्यवहार।

निश्चय नय जीव के स्वभाव को बतलाता है। वह कहता है कि जीव शुद्ध है, अविनाशी है इत्यादि। जैसा कि ऊपर मैंने बताया है और व्यवहार—नय कहता है कि जीव अशुद्ध है, जन्म-मरण करने वाला है, संसारी है

इत्यादि। जैसा कि हम लोगों को अनुभव में आ रहा है। निश्चय नय से वस्तु के सच्चे स्वरूप को समझो और व्यवहार नय से कर्म सहित संसारी अवस्था को भी जानकर कर्मों से छूटने का प्रयत्न करो।

निश्चय नय जब व्यवहार की अपेक्षा करता है, तब वह सच्चा है और व्यवहार नय जब निश्चय की अपेक्षा करता है, तब वह सच्चा है, अन्यथा एक नय के हठ को पकड़ने से जीव मिथ्यादृष्टि बन जाते हैं। कहा भी है कि 'यदि तुम जिनवचन को समझना चाहते हो तो निश्चय और व्यवहार नय में गलती मत करो, ठीक से समझो अन्यथा व्यवहार नय का आश्रय लिये बिना तीर्थ (मोक्षमार्ग और फल) का नाश हो जायेगा और निश्चय नय का आश्रय लिए बिना तत्त्व का नाश हो जायेगा।'

सुधा–अब मेरी समझ में आ गया कि आत्मा के स्वभाव को समझकर अपने से भिन्न माता, पिता, धन, कुटुम्ब, शरीर आदि से धीरे-धीरे ममत्व घटाने का और पुनः हटाने का ही प्रयत्न करना चाहिये। इनको अपने से भिन्न समझने से पुनः इनके वियोग में अपने को दुःख नहीं होगा।

अध्यापिका–हां! तुम ने बिल्कुल ठीक समझा है। इसके लिए तुम्हें जैन ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करना चाहिये।

प्रश्नावली–(1) शरीर से आत्मा भिन्न कैसे है? (2) शरीर का क्या लक्षण है? (3) जीव का स्वभाव क्या है? (4) निश्चय और व्यवहार नयों का लक्षण बताओ। (5) क्या व्यवहार नय झूठा है?

पाठ–18 भगवान ऋषभदेव

एक समय राजा वज्रजंघ ने रानी श्रीमती के साथ वन में श्री दमधर और सागरसेन ऐसे चारण ऋद्धिधारी मुनियुगल को आहार दान दिया। वहाँ पर राजा के मतिवर मंत्री, आनन्द पुरोहित, धनमित्र सेठ और अकंपन सेनापति भी आहार देख रहे थे। निकट में ही नेवला, सिंह, बानर और सूकर भी एक-टक हो आहार देख रहे थे। उसी समय देवों ने वहाँ पर रत्नादि वर्षाये थे।

आहार होने के बाद राजा ने मुनिराज से धर्मोपदेश सुनकर पुनः अपने और उन सभी के भव-भवांतर पूछे। मुनिराज ने कहा–राजन्! इस भव से

आठवें भव में आप प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव होंगे, रानी श्रीमती का जीव राजा श्रेयाँस होगा और वे मंत्री आदि चारों जन और नेवला आदि चारों जीव आपके ही पुत्र होंगे। अब से लेकर मोक्ष जाने तक ये सभी आपके साथ ही होते रहेंगे।

इतना सुनकर वे सभी बहुत प्रसन्न हुये।

ऋषभदेव का जन्म–इन्द्र द्वारा बनाई गई अयोध्या नगरी में अन्तिम कुलकर महाराज नाभिराय रहते थे। उनकी रानी मरुदेवी ने किसी दिन रात्रि के पिछले भाग में ऐरावत हाथी आदि सोलह स्वप्न देखकर प्रातः पति से उनका फल पूछा और "तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर का जीव आ गया है," ऐसा सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुईं। उस आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के छह महिने पहले ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आंगन में रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दिया था। श्री, ह्री आदि देवियाँ माता की सेवा करती थीं।

चैत्र कृष्ण नवमी के दिन भगवान का जन्म होते ही इन्द्रों ने आकर शिशु को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर क्षीर समुद्र के जल से प्रभु का जन्माभिषेक किया। पुनः 'ऋषभदेव' नाम रखकर बड़े वैभव के साथ माता को सौंप दिया। बचपन में ऋषभदेव के साथ देवबालक खेलते रहते थे। युवावस्था में उनके पिता ने यशस्वती और सुनन्दा कन्याओं के साथ प्रभु का विवाह कर दिया था। रानी यशस्वती ने भरत चक्रवर्ती आदि सौ पुत्रों को और ब्राह्मी कन्या को जन्म दिया। रानी सुनंदा ने कामदेव बाहुबली और सुन्दरी कन्या को जन्म दिया था। पूर्व के मतिवर मंत्री भरत हुए, आनन्द पुरोहित बाहुबली हुए, अकंपन सेनापति ऋषभसेन हुए, धनमित्र सेठ अनंत विजय हुए। उसी प्रकार सिंह, सूकर, वानर और नकुल के जीव क्रम से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के पुत्र हुए थे। एक सौ तीन पुत्र-पुत्रियों सहित भगवान ऋषभदेव देवों द्वारा लाए गए भोग पदार्थों का अनुभव करते हुए गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहे थे।

विद्या और आजीविका का प्रादुर्भाव–भगवान जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञान के धारक होने से स्वयं गुरु थे। किसी समय उन्होंने ब्राह्मी को "सिद्धेभ्यो नमः" मंगलाचरणपूर्वक दाहिने हाथ से 'अ आ' आदि वर्णमाला लिखकर लिपि विद्या सिखाई और सुन्दरी को बांये हाथ से इकाई, दहाई आदि अंक विद्या का उपदेश दिया। दोनों कन्याओं को तथा भरत, बाहुबली आदि सभी पुत्रों को समस्त विद्याओं का अध्ययन कराया था।

काल के प्रभाव से कल्पवृक्ष नहीं रहे, तब व्याकुल प्रजा के दीन वचन सुनकर भगवान ने विचार किया कि 'विदेह क्षेत्र में जो व्यवस्था वर्तमान में है, वही व्यवस्था यहाँ बनाना चाहिये।' प्रभु के स्मरणमात्र से ही इन्द्र ने आकर सबसे पहले अयोध्या के बीच में और चारों दिशाओं में जिनमंदिर का निर्माण करके कौशल, अंग, बंग आदि देश और नगर बनाये। उनमें प्रजा को बसाकर प्रभु की आज्ञा लेकर इन्द्र वापस चला गया। भगवान ने प्रजा को असि (शस्त्र धारण), मसि (लेखन कार्य), कृषि (खेती), विद्या (पढ़ना), वाणिज्य (व्यापार) और शिल्प (हस्तकला) इन छह कर्मों का उपदेश दिया। उस समय भगवान सरागी थे। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की (ब्राह्मणवर्ण चक्रवर्ती भरत ने स्थापित किया था) पापरहित आजीविका के अनेक उपाय प्रभु ने बतलाये। इसीलिए भगवान युगादिपुरुष, ब्रह्मा, विधाता, युगसृष्टा, विश्वकर्मा, कृतयुग और प्रजापति आदि कहलाये।

मोक्षमार्ग प्रणयन–किसी समय सभा में इन्द्र ने संगीत का आयोजन किया। नीलांजना अप्सरा नृत्य कर रही थी। नृत्य के बीच में ही उसकी आयु समाप्त हो गई। नृत्य में भंग न हो, ऐसा सोचकर उसी क्षण इन्द्र ने उसकी जगह दूसरी अप्सरा उसी सदृश खड़ी कर दी। नृत्य बराबर चालू रहा परन्तु अवधिज्ञानी प्रभु ने सारी बातें समझ लीं और उन्हें वैराग्य हो गया। तब भरत का राज्याभिषेक करके इस पृथ्वी को 'भारत' इस नाम से सनाथ करके इन्द्र द्वारा लाई गई नाग की पालकी पर बैठकर भगवान वन में पहुंचे। वहां, "नमः सिद्धेभ्यः" मंत्र बोलकर केशलोंच करके दिगम्बर दीक्षा ले ली। यह दिन चैत्र बदी नवमी का दिन था। भगवान छह महीने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। भगवान के साथ बिना समझे ही चार हजार राजाओं ने भी नग्न मुद्रा धारण कर ली थी, किन्तु एक-दो महीने में ही वे सब भूख-प्यास से व्याकुल होकर भ्रष्ट हो गये और उन्होंने अनेकों पाखंडमत स्थापित कर दिये।

जगद्गुरु भगवान छह महीने बाद आहार को निकले किन्तु आहार देने की विधि किसी को मालूम न होने से छह माह और व्यतीत हो गये, भगवान को आहार नहीं मिला, वे भ्रमण करते हुये हस्तिनापुर नगर में आये। उन्हें देखकर श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण हो गया। (राज वज्रजंघ के साथ श्रीमती की पर्याय में मैंने मुनियों को आहार दिया था।) उन्हें आहार विधि ज्ञात हो गई, पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक राजा श्रेयांस ने भाई सोमप्रभ के साथ इक्षुरस का आहार दिया। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का था जो कि आज भी अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध है।

हजार वर्ष बाद फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन भगवान को केवलज्ञान प्रगट हो गया। इन्द्रों ने समवसरण की रचना कर दी। भगवान के पुत्र ऋषभसेन भगवान के प्रथम गणधर हुये। ब्राह्मी-सुन्दरी ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली। ब्राह्मी आर्यिकाओं में प्रमुख गणिनी हो गईं। भगवान ने कुछ कम एक लाख पूर्व वर्ष तक विहार करके दिव्यध्वनि द्वारा भव्यों को मुनिधर्म और श्रावक धर्म का उपदेश दिया था।

अंत में भगवान कैलाशपर्वत पर ध्यान में स्थित हुए। माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सभी कर्मों का नाशकर एक समय में लोक शिखर के अग्रभाग पर विराजमान हो गये। ये भगवान इस युग के प्रथम तीर्थंकर कहलाते हैं। इनको पुरुदेव, आदिनाथ और वृषभदेव भी कहते हैं। बैल के चिन्ह से इनकी प्रतिमा को जाना जाता है। ये भगवान् जैनधर्म के प्रवर्तक न होकर उपदेशक ही थे क्योंकि जैनधर्म सार्वभौम धर्म है, विश्वधर्म है, अनादि-निधन धर्म है।